अंक-1 खंड-2

जनवरी-मार्च 2024

अनुनाद

हिन्दी साहित्य, समाज और संस्कृति की ऑनलाइन त्रैमासिक पत्रिका

संपादक

शिरीष कुमार मौर्य

मेधा नैलवाल

अनुनाद

हिन्दी साहित्य, समाज और संस्कृति की ऑनलाइन त्रैमासिक पत्रिका

सम्पादक मंडल

शिरीष कुमार मौर्य (मुख्य सम्पादक)
प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)
पिन -263001
shirishkumarmourya@kunainital.ac.in

मेधा नैलवाल
अतिथि व्याख्याता, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)
पिन -263001
medhanailwal@kunainital.ac.in

संजय घिल्डियाल
प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)
पिन -263001
sanjayghildiyal@kunainital.ac.in

राजेन्द्र कैड़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखंड)
पिन- 263139 rkaira@uou.ac.in

अनिल कार्की
संविदा व्याख्याता, हिन्दी विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखंड)
पिन- 263139 anilk@uou.ac.in

अधीर कुमार
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, ऋषिकेश परिसर, श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय, ऋषिकेश (उत्तराखंड)
पिन – 249201 adheerkumar@sdsuv.co.in

परामर्श मंडल

हरीशचंद्र पांडे (हिन्दी कवि)

लीलाधर मंडलोई (हिन्दी कवि)

सुबोध शुक्ल (हिन्दी आलोचक)

आशीष त्रिपाठी (हिन्दी आलोचक)

संपर्क

पता – वसुंधरा/ तीन, भगोतपुर तड़ियाल
पीरूमदारा, रामनगर, उत्तराखण्ड – 244715 दूरभाष : 9557340738
ई-मेल : medha.nailwal.anunad@gmail.com

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखक के स्वयं के हैं। संपादक की इनसे सहमति अनिवार्य नहीं है।

अनुनाद के जून 2024 में प्रकाश्य अगले अंक के लिए रचनाएँ आमंत्रित हैं। आप कविता, कहानी, आलोचना/समीक्षा, कथेतर गद्य और समाज और संस्कृति जुड़े आलेख हमें भेज सकते हैं।

रचनाएं यूनीकोड फॉन्ट में ही प्रेषित करें।

अनुक्रम

- कविता
  1. सबको अपने हिस्से की धूप चाहिए/ कौशलेन्द्र की कविताएं/पृ. 03
  2. बनारस पर कविताएं /केशव शरण की कविताएं/पृ. 10
  3. मिलती रही मंज़िलों की खबर ग़म-ए-दौराँ की उदासियों से भी/ शुभा द्विवेदी की कविताएं /पृ. 22
  4. डाली पर झुका गुलाब तुम्हारी स्मृति में खिला है/सीमा सिंह की कविताए/पृ. 26
  5. शहर से गुज़रना तो सिर्फ तुम्हारी याद से गुज़रना था/पंखुरी सिन्हा की कविताएं/पृ. 29
  6. एक कवि और करता क्या है दरार की नमी बनने के आलावा/ शंकरानंद की कविताएं 31
  7. फिलहाल तो उसके हाथों में लग गया है सिसौंण/हरि मृदुल की कविताएं/पृ. 33
  8. सफेद धुंआ बन जाने से पहले, वह जी लेना चाहता हो हर रंग/रंजना जायसवाल की कविताएँ /पृ. 39
  9. कैसी रही होगी वह भूख,कैसा रहा होगा वह अभाव/ महेश पुनेठा की कविताएं /पृ. 47

- कहानी
  10. पाँच लघुकथाएं /सुनील गज्जाणी /पृ. 52
  11. मकान मालकिन (रोऑल्ड ढल)/ हिंदी अनुवाद : श्रीविलास सिंह/ पृ. 55

- आलोचना/समीक्षा
  12. चेतना को झकझोरते 'भीड़ और भेड़िए' के व्यंग्य/ आर पी तोमर/पृ. 65

- **कथेतर**
  13. हिन्दी साहित्य और न्यू मीडिया /देवेश पथ सारिया से मेधा नैलवाल का साक्षात्कार/ पृ. 75

सबको अपने हिस्से की धूप चाहिए

कौशलेन्द्र की कविताएं

छद्म

रात की स्याही में चाँद
चंद्रबिंदु के समान चमक रहा था
अनगिनत तारे अनंत आकाश
ज़मीं पर दूर तक फैली रेत
रेत के पहाड़
रेत की घाटियाँ
छिटक चाँदनी में रेत के कण टिमटिमाते
ज्यों विशाल मरुभूमि में तारक उतर आए हों
कहीं छाया कहीं कांति
भ्रम के सरोवर दिखाई देते.....

जहाँ कुछ नहीं होता
वहाँ छद्म होता है।
***

रह जाना

मैं नहीं होना चाहता सही सटीक
हमेशा समय पर
मैं चाहता हूँ कभी कुछ रह जाए
क़िताब पढ़ूँ
खुली छूट जाए
उसके पन्ने साँस ले सकें

उनकी महक बिखरे
कलम से लिखूँ
थोड़ी रोशनाई हाथों में लग जाए
कहीं किसी जगह कोई वर्तनी रह जाए
पढ़ने वाला मुस्कुरा उठे उसके अर्थ में
तैयार होते कमीज़ की एक बटन खुली बनी रहे
कहीं कोई प्यार से टोक दे
घर से निकलूँ ये न सोचूँ कि कहीं कुछ छूट गया!
किसी पुराने साथी से मिलूँ बतियाता रहूँ
देर हो जाए
तारों से भरे आकाश को देखते नींद बिसर जाए

रह जाने में जीवन रहता है।
***

जीवन

डारे पर पड़ा भीगा कपड़ा
बूँद बूँद टपकता
सूखता
भार घटते
लची हुई डोरी उठने लगती

उतार लिया जाता

नींद की कहानियां

कहानियाँ नींद को दी गयी सदाएँ हैं
शुरू होते ही झपने लगती हैं पलकें
कहने वाले के लफ़्ज़ थपकी सी देते हैं
इस तरह ताल में जैसे साँस चलती है
दिल धड़कता है
इन जुगलबंदियों से रक्त में घुलने लगता है आलस
आँखों में उभरते हैं लाल डोरे
ख़मीर की तरह उठ आता है नशा
नींद को आवाज़ देते
अक्सर अधूरी छूट जाती हैं कहानियाँ
सुनाने वाला खीझता नहीं
मुस्कुरा उठता है

उनींदे किस्सों की दोहर से
नींद के पाँव छोटे ही रहते हैं
***

दु:ख

खिली धूप में सहसा मेघ घिर आते हैं
ज़ोर से हँसते
थोड़ी साँस फूल आती खाँसी का ठसका उठता
खिलखिलाते बच्चे खेल में ही
बिलख उठते हैं कभी
लगातार श्रम से सजाए गए बाग़ीचे
वीरान लगते हैं किसी मौसम में,
रंगे चुंगे घरों में भी दीवारें छीज उठती हैं सीलन से
बरसात के बाद

दु:ख जीवन में इतनी ही सहजता से
लौटता है .....बार बार
***

बंधन

हिदायतों ने जीवन को
उस समय तक बांधे रखा
जब तलक कुछ हासिल न था
कुछ पा लेने की ख़ुशी में
उन्हें टूटना था

टूटने छूटने के बाद
पूछना भी छूट गया
इस भ्रम में कि अब उनकी जरूरत नहीं,
स्निग्धता जो हर ज़रूरी बात में
टोक देती
अर्जित की गयी योग्यता के ताप में
सूख चली

एक ऊब सी उठती
सब कुछ अपने मन का करते,
ये एहसास देर से हुआ.....

.....एक उम्र के बाद
कुछ चीज़ों की लत पड़ जाती है.....
***

सहमी धूप

शहर के बाग़ीचे में
धूप अठखेलती है
कहीं किसी पेड़ की शाख़ पे झूलती
चौराहे में लगी पत्थर की मूरत पर दमकती
सर्द मौसम में जान फूँकती है
लाल बत्ती पर ठहरी गाड़ियों की छत पर नाचती
किसी घर के बारज़े से झाँकती, उड़ जाती
बीचोंबीच पोखर के पानी में तैरकर
हवा सी लहरती है

सबको अपने हिस्से की धूप चाहिए
कैसे भी
ये जानते हुए कि
बड़ी इमारतों की झिरी से छनकर छुपती धूप
अब सहमी हुई है
***

ग़ालिब की याद में

बल्लीमाराँ की गली क़ासिम
पर रेख्ते का क़ाफ़िला बरसों पहले आ रुका था
चाँदनी चौक के सजीले बाज़ारों में मिर्ज़ा का नाम
आज भी
कभी कभार किसी की ज़बान पर कौंध जाता है
शायरों को इस जहाँ ने
कब का ख़ारिज कर दिया
वो तो 'ग़ालिब' है
जो फ़लक पर वक़्त की धुंध की तरह छाया है
ग़ज़ल के मिसरे आते जाते टपक पड़ते हैं
आज भी कुछ लोग उन्हें बीन लेते हैं
महफ़िलों में सजा देते हैं
बेदिली के सन्नाटों से फिर वही दौर गूँज उठता है
***

तुम्हारा शहर

बरसों बाद
वो शहर अजनबी होगा
जो कभी तुम्हारा था
हाईवे से कटकर जाती सड़क आगे जाकर गुम हो जायेगी
वो पत्थर नहीं दिखेगा जिसपर शहर के नाम के नीचे शून्य किलोमीटर लिखा था
पेड़ जो मोड़ पर घूम जाने का शिनाख़्त था
जाने कितनी कंक्रीट के नीचे उसका ठूँठ दबा होगा
जाने पहचाने अड्डे अपनी नयी शक़्लों में घूरेंगे
देर तक निग़ाह किसी परिचित चेहरे को टटोलेगी
लौट आयेगी,
साथ खेलने वाले
अब वो नहीं होंगे जो थे

गाँव की गली सड़क बन चुकी होगी
जिसके भीतर तुम्हारा घर है
वहाँ मक़ान की जगह मैदान होगा
उसके छूटे खण्डहरों में तुम्हारा बचपन,
वहीं कहीं बाबा की आधी अधूरी चौकी पड़ी होगी
उनके कमरे की खिड़की की टूटी सांकल
सूखे नीम के पेड़
ढही हुई मैदान की बाउंड्री भी
मालती की बेलों में सूने पत्ते होंगे
बड़े कुँए की जगत से पीपल के छौने भीतर
पानी की ओर झांकेंगे
छत की मुंडेर पर उगी पीली घास आकाश ताकती रहेगी
आकाश!..... हाँ आकाश वही होगा
ओस के साथ
एक आस टपकती
तुम्हारे आने की प्रतीक्षा में
***

किसी दयार पर

किसी दयार पर जाना
तो मकाँ नहीं
उनकी दीवारों की दरारें देखना
बाग़ों में फूल नहीं
पुराने दरख़्त ढूँढना

मिट्टी की नमी नहीं
उसका सौंधापन महसूसना

पत्तों की शादाबी नहीं
उनका पीलापन छूना

देख लेना
बच्चे खेलते हैं वहाँ
पंछी चहकते हैं
साँझ ढले.....

कहीं कोई गीत गुनगुनाता है
***

तृप्ति

बरसों से बंजर भूमि में
दूब का हरियाना
तपेदिक के कृशकाय चेहरे में
उपचार से गालों का भरना
कांति लौटना,
महीनों से निद्रा के लिए जागती आँखों का
विश्रांति में सुख से सोना
कुम्हलाए शावकों को ठिठुराते शिशिर में
गर्म स्थान का आश्रय मिलना
जेठ की भरी दुपहरी में प्यास से आकुल चिड़ियों के लिए कटोरी में पानी
चावल के दाने रखना,
विषाद से मुरझाए मन में जीवन की आस जागना

एक टूटते संबंध का छूटते हाथ को थाम लेना
फिर से साथ चलना,
निरंतर चलते वहीं आकर ठहर जाना
जहाँ कितनी अपनी आवाज़ें पुकारकर थम गयीं

इससे बड़ी तृप्ति अगर है
मैं नहीं पहचानता!

बीत जाता है जीवन

जीवन बीत जाता है
उत्सवों, समारोहों, शोक सभाओं में
यूँ ही
किन्हीं औपचारिक गोष्ठियों में
कहीं यहाँ कहीं कहाँ
आदमी वहाँ अक्सर वो नहीं होता
जैसा हुआ करता था या
अभी भी है
ये मुलाक़ातें पूरी नहीं होतीं
बातें उठती हैं
किसी व्यवधान में टूट जाती हैं
अगली बार के वायदे के साथ

सहसा एक दिन
उन अधूरी मुलाक़ातों के सिलसिले में
उस पूरी मुलाक़ात का वादा
दम तोड़ देता है
***

कुछ यादें

यादों की सरहद होती है
उस पर बाड़ बांधते भी
कितना कुछ बार बार आता रहता है
खरोचों में लहूलुहान
जगह जगह से रिसता
कई बार कुछ जाने पहचाने यादों के स्केच
आपके आज से मेल नहीं खाते
फिर भी उन्हें हटाते ज़ेहन का एक हिस्सा
सूना लगता है
ख़ाली कमरे की तरह
जिसमें उस याद की गूँज
बार बार लौटती है
ऐसी यादों को भुलाते
ज़िन्दगी कहीं गुम हो जाती है
उन ज़रूरी फाइलों की तरह
जो कुछ मिटाते कंप्यूटर की मेमोरी से मिट जाती हैं
***

अरसे बाद

इतने अरसे बाद
समय वहीं था
उस छोटे शहर में अपनी स्मृतियों को ढूँढते
बहुत कुछ नया बिसर रहा था
विद्यालय अब स्कूल बन चुका था

कक्षा एक सजा हुआ कमरा
हाँ पीछे की बेंच पर प्रकाल से खींचा मेरा नाम
ग़र्द से झांक रहा था
सौभाग्य से कुछ चीजों पर विकास की दृष्टि नहीं पड़ती
सड़कें इधर उधर टहल रही थीं
थोड़े भटकाव के साथ
मित्र जो मिले वहीं थे
बस चेहरों की परतें बढ़ गयी थीं
अतीत के जितने खण्डहर थे
उनमें वही प्राण थे
आबोहवा में वही सिहरन

जो शहर जन्म देते हैं
वो ढूँढ ही लेते हैं
अपनी संतानों को
***

मृत्यु

मृत्यु अपने से अधिक
अपनों की मृत्यु है

शेष जीवन में
मृत्यु जीवित रहती है

मृत्यु होने तक
चिड़चिड़ाती यादें

कुछ यादों में चिड़चिड़ाहट होती है
उनके आते ही हम स्वयं से रूठ जाते हैं
आस पास
लोग भांप लेते हैं
भौंचक रहते हैं
वो सबको दिखायी देती है
नितांत अकेली
और हम भी
उस अनुपस्थिति में
स्वयं के लौट आने की प्रतीक्षा करते हुए
***

धुआँ (नज़्म)

जीवन के धुंधलके में
रोज़ टहल पर मिल जाती है एक भोर
जाने किस गली किस छोर
चमक उठता है सन्नाटा
दूर तलक बंद बाज़ारों में
यूँ कि जैसे अंधेरों में बिजली कौंध जाती है
मेरे भीतर किसी गुमनाम की
आवाज़ लौट आती है

सुबह की बात
सुबह ही दफ़न कर देता हूँ
लौट आता हूँ उन्हीं धुंध के शहसवारों सा

घने लोगों के बीच छाए गुबारों का
कि ज़िंदगी
दूर तक बिखरा हुआ
एक धुआँ है
बस धुआँ .....
***

डिमेंशिया(मस्तिष्क की व्याधि)

उसे आईने में अपना चेहरा अजनबी दिखता
वो ख़ुद से ही कुछ पूछना चाहती
पर शब्द कहाँ रह गए थे!
मुँह घुमाकर देखती
बिस्तर के चार पाए उसे बौनों की तरह चिढ़ाते
शुरू में चीख पड़ती
अब वो भी कहाँ याद था !
उठती तो खड़ी रहती
चलती तो चलती ही
देर तक अनिश्चित
चेहरा किसी मरुस्थल की रेतीली भूमि जिसमें
कुछ सिलवटें पड़तीं, मिट जातीं
वो ऐसे देखती
जैसे कोई शिशु देखता है
उसकी आँखों का सूनापन अंधेरे गहरे कुएँ की
तरह डरावना था
जिसमें बरसों से किसी ने न झाँका
याद अब
बहुत दूर की रिश्तेदार थी जो कभी कहीं किसी
रोज़
टपक पड़ती
भीनी मुस्कान ठहर जाती
क्षण भर के लिए
फिर आँसू ढरक आते
कोई नाम भी आ जाता ज़बान पर

जीवन कहीं
बहुत पीछे छूट गया था
वो मृत्यु से थोड़ा पहले मरकर
बीत चुके की कृतज्ञता में
जीवित थी
***

उत्तरायण

पतंगों से भरे आकाश में
हर रंग की पतंगें हैं
यूँ नीली क़िताब के
रंगीन पन्ने
हवा से फड़फड़ाते
छिटक जाते

दूर क्षितिज में
धुंध सी सिमटी है
किसी ने बुहारकर लगाया हो जैसे
आज के लिए

उत्तरायण होते सूर्य की
यात्रा का विराम दिवस
कि अब तीव्र रश्मियों से बरसो
तेज बिखेरो
ठिठुरते प्राणों पर
गर्म उच्छवास फूँको
***

आज का दिन

घने कुहासे की दोहर ओढ़े
शहर ठिठुर रहा है
सड़कें अलावों के धुएँ फूँकती
हाँफ रही हैं
बाशिंदे कई परतों के भीतर दबे
नहीं चाहते कोई उनकी पुकार सुने
पेड़ पौधे सर्द आग के समक्ष सिर झुकाए
थरथराते हैं
पशु पक्षी अपने खोलों में
थोड़ी थोड़ी गर्मी समेटे दुबके हैं
दूर तलक सन्नाटा है
बर्फ़ीली हवा की निगहबानी में
आज कोहरा निज़ाम है
ऐसी सर्द हुक़ूमतों में
सुबहें नहीं होतीं
सिर्फ़ ढलती हैं
***

बनारस पर कविताएं

केशव शरण की कविताएं

आरती के पश्चात

घाट पर
हमारे बैठे-बैठे
गंगा से डाल्फिनें ग़ायब हो गईं
गुम हो गई उस पार की हरियाली
और गंगा भी मटमैली

आरती होने लगी
जिसकी दिव्यता
भारत-भर में फैली
पुरानी और सँकरी काशी को तोड़-फोड़
लम्बा-चौड़ा कॉरीडोर निकला

आरती के पश्चात
कॉरीडोर से
हम सब अपने-अपने घर गये
***

वो चाँद ही देखिए

हम बैठे हैं
संत रविदास घाट पर
जो लग रहा है कि
चल रहा है

जबकि घाट नहीं
लहरें चल रहीं
पतित पावन गंगा की,
घाट अपने ठाँव है

अँधेरे-उजाले में डूबे
पानी पर लंगर डाले
वह एक नाव है
और यह दृष्टि का छलाव है
कि वह जूता लग रही
किसी विशाल देव के एक पाँव का
मरम्मत के लिए रखा
रविदास जी के मंदिर के सामने

और वो चाँद ही देखिए
सोने का कंगन नज़र आ रहा है
***

अंतिम और पहली गली

किसी क़स्बे की गली-सी
यह काशी की अंतिम गली है
इसके बाद
शाही नाला
गंगा में गिरने वाला

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन के टीले से लगी
यह गली
विरक्त साधुओं की है
इसमें गृहस्थों के घर नहीं
विरक्तों के घेरे
और डेरे हैं

टीले की मिट्टी,
झाड़ियों और लताओं के बीच से
झाँकती अत्यंत पुरानी ईंटें
बता रही हैं वे काशी नरेश के
प्राचीनतम क़िले की हैं
जहाँ से भीष्म ने
उनकी तीन कन्याओं का हरण किया था

महाभारत की तरफ़ से इसमें दाख़िल होइए तो
यह काशी की पहली गली है
***

मणिकर्णिका घाट

निरन्तर जलते
हवन कुण्ड हैं
निरन्तर जलती चिताएँ
और भस्म होते मुण्ड हैं
निरन्तर बहती गंगा
निरन्तर दाने चुगते
कबूतरों और गौरैयों के झुण्ड हैं
निरन्तर लोग रस्मों में लगे हैं

निरन्तर चर्चाओं में रमे हैं
शोक में कोई नहीं दिखता
यहाँ वह भी
जो शोक-गीत लिखता
***

यह अवसर शिव है

शव न हो जीवन
इसलिए उत्सव होने चाहिए
हर जगह
हर समय

जहाँ अवसर मिले
जब अवसर मिले
अवसर का लाभ लेना चाहिए
उत्सव भाव से

नहीं देखना चाहिए कि महाश्मशान है
नहीं देखना चाहिए कि
गणिकाओं का मचान है
अवसर विशेष है
चैत नवमी में दो दिन शेष है

आपके सामने उत्तेजक और
उल्लसित नृत्य-अदाएँ भी हैं
आपके सामने
धू-धू जलती चिताएँ भी हैं
और है
अँधेरे-उजाले में बहती गंगा
और अट्टालिकाओं के ऊपर
आधा चाँद टिमटिमाता
यह अवसर शिव है
साल-भर में एक बार आता
जिसके पीछे
गणिकाओं की
मोक्षगत मान्यताएँ भी हैं
***

साइबेरियन पंछी

पंछी नहीं हैं हम
हमें पासपोर्ट चाहिए

हम उनकी भूमि पर नहीं उतर सकते
बिना पासपोर्ट के
वे हमारी गंगा में
अठखेलियाँ कर रहे हैं
वे उन्मुक्त हैं
लेकिन उनके यहाँ के लोग नहीं
उनके यहाँ के लोग भी
हमारी तरह ही बँधे हैं

ग़नीमत है कि
उनके यहाँ के लोगों की तरह
हम नहीं

युद्ध में फँसे हैं

गुनगुनी धूप में
काशीराज का क़िला देखते
आराम से
घाट पर बैठे हैं
***

खुल जा सिमसिम और रिमझिम

स्मारक का फाटक बंद
शोध संस्थान के प्रवेश द्वार पर ताला
घर पर साँकल
लेकिन कुएँ के
चबूतरे पर बैठ सकते हैं सानंद

यह चबूतरा
और कुआँ
" ठाकुर का कुआं " लिखने वाले
महान कथाकार का है
और यह
पूस की एक धूप-सुहानी दोपहर

खुल जा सिमसिम
और रिमझिम का दिन है
इकतीस जुलाई
***

नागरी नाटक मंडली

बहुत दिनों से
कुछ नहीं हुआ
नाट्यशाला में

न ठहाके लगे
न आंसू झरे
लोग डरे-डरे
घरों में
बंद रहे
एक लम्बा कर्फ़्यू
कोरोना वायरस के विरुद्ध

लोग घरों से
निकलने लगे हैं
लेकिन नाट्यशाला तक
पहुँचने में समय लगेगा
जिस पर बारिश गिर रही है झमाझम
संगीत के साथ
प्रांगण के पौधों के बीच
नृत्य कर रही हैं जल की बूँदें
और पीपल के भारी-भरकम पेड़ पर
प्रेम-संवाद बोल रही हैं कोयलें
***

बनारस के गाँव

कच्चा मकान
और मिट्टी का दुआर
नीम और आम के साथ
पशु और नाद के साथ
कुछ ही दिखते हैं
बाक़ी पक्के घर हैं
जो शहरों की पाश कालोनी
या पुराने मुहल्ले से
उठाकर लाये गये लगते हैं
जिनमें रहने वालों को
शहर भी उठा ले गये हैं
रोज़गार का प्रलोभन भेज

गाँव-गाँव
यही दृश्य है व्याप्त
समाप्त होते प्रेमचंद के लमही से
गेहूँ के छोटे-छोटे पौधों से लहलहाते
धूमिल के खेवली समेत
***

कल्पना

गेदें के फूलों में
लाली वही है
सरसों के फूलों में
पियराई वही है
हरियाली वही है
गेहूँ के पौधों में
जो हम देखते आये हैं
जाड़ा-दर-जाड़ा

लुभावने हैं खेत
चित्ताकर्षक है वरुणा नदी का घुमाव
इन्द्रधनुषी त्रिकोण रचता
भारत के नक़्शे-सा
सर्व सेवा संघ राजघाट के टीले के नीचे
कृष्णामूर्ति न्यास के पीछे

मैं कल्पना करता हूँ
इस त्रिकोण में
जो ख़ूबसूरत दुनिया आबाद है
उसे आबाद रखते हुए
कैसी-कैसी दुनिया बसायी जा सकती है
मैं कल्पना करता हूँ
यह भारतमाता उद्यान है
जैसे भारतमाता मंदिर है
काशी विद्यापीठ कला संकाय परिसर में,
जिसके निर्माण में
कुछ नहीं करना है
ख़ाका तैयार है
केवल भरना है
हर प्रदेश के भूगोल से
उसके लोक से
इतिहास से

पत्थरों, काष्ठ और घास से

किसके वश
जो पूरा भारत घूम ले
उसे देख-पढ़ ले
लेकिन सबके वश में हो जायेगा
मुझे उम्मीद है
यदि इस कल्पना को
कोई गढ़ ले

लेकिन सोचता हूँ
हवा में महल बनाने जैसा है
इसको गढ़ना
इसलिए छोड़ता हूँ
कल्पना करना
क्योंकि क्या होगा
कल्पना करके
की तो थी
मोतीझील को लेकर
कवि ज्ञानेन्द्रपति के साथ

कहाँ है अब वो
कब की पट चुकी है वो
कंक्रीट के ढाँचों से
इसलिए छोड़ता हूँ
कल्पना करना
और बात का रुख़
गेंदे के फूलों की ओर मोड़ता हूँ
जिनमें अभी वही लाली है
जबकि नदी
आज और काली है
***

निर्मलीकरण

जिस मेहनत से नाविक नाव खे रहा है
वह हमें अस्सी घाट पहुँचा देगा समय से
मणिकर्णिका और हरिश्चन्द्र घाट
निकल गए पीछे
और हम आ पहुँचे
गायघाट से तुलसी घाट
जिसके आगे है बस अस्सी घाट

जिस मेहनत से वह नाव खे रहा है
उस मेहनत से निर्मलीकरण काम करता तो
निर्मल हो गई होती गंगा
गंगासागर तक
लेकिन कहते हैं कि
बीच में कोई सारा पैसा खा गया

अस्सी घाट आ गया
***

नर्तकी

वह इधर से जाते हुए

ढलान का रास्ता

और उधर से आते हुए
चढ़ान का रास्ता
पत्थरों से जड़ा
जिस पर बरसात का पानी
झरने की तरह बहता है
किसी-किसी शाम
मुझे बुला लेता है
और लोकनायक जयप्रकाश नारायण की
छोटी-सी मूर्ति के आगे
उतार देता है
गाँधी विद्या संस्थान के
निष्क्रिय पड़े परिसर में
जहाँ से मैं वरुणा के किनारे पहुँच जाता हूँ

उसी पर लौटते हुए एक दिन
धुंधलके में
मैंने देखा जो
अपने पाँवों के नीचे
देखता रह गया हैरत से

मेरा सामना था एक औरत से
एक ख़ूबसरत नर्तकी
जो अपनी लम्बी-लम्बी
पतली-पतली बाँहें फैलाये
और पैर
नृत्य की मुद्रा में लाये
लुभा रही थी
मुस्कुरा रही थी

मनमोहक अंदाज़ में
किनारे जड़े
एक पत्थर पर उकेरी हुई

कभी इसकी चर्चा नहीं सुनी थी
जबकि यहीं हूं कई साल से
कभी इसे देखा नहीं था
जबकि इसकी बग़ल से कितनी बार गुज़रा
शायद इसके ऊपर से भी
उन हज़ारों लोगों की तरह
जिनमें जननेता भी थे
सामाजिक कार्यकर्ता भी
विद्वान भी
आमजन और पी ए सी के जवान भी

वह सबके पाँवों में रही
और सबकी नज़रों से छुपी रही
हैरत है

वह एक जीवंत औरत है
जो नाच रही है
इस हाल में भी
अपने पत्थर पट पर
और मेरे ख़याल में भी

है कोई उपाय
उसे यहां से निकालकर

भारत कला भवन भिजवा दिया जाय ?

विकास कथा

जिस महावन में
बुद्ध विचरे
बचा था वह
ढाई एकड़
नगर बीच स्थित
परित्यक्त राजकीय शिक्षक शिक्षण केंद्र के
परिसर में
जहाँ विवेकानंद कोठी
और विनोबा कुटी
बदल गई है खंडहर में
आज सहसा
मुझे विश्वास नहीं हुआ
मैं हैरान था
वन सिर्फ़ आधा एकड़ बचा था
उसके आगे सिर्फ़ मैदान था
जहाँ एक नये निर्माण की
तैयारी चल रही थी !
***

दो नदियाँ

दो नदियाँ
जो एक-दूसरे से मिलती हैं
दोनों की दशा
एक जैसी होती है
जब बाढ़ आयेगी तो

दोनों में आयेगी
जब सुखायेंगी तो
दोनों सुखायेंगी
प्रदूषित होंगी तो
दोनों होंगी

लेकिन जब निर्मलीकरण की
बात होगी तो
हम गंगा को ले लेंगे
वरुणा को छोड़ देंगे

वरुणा को छोड़ देंगे
गंगा फिर भी नहीं निर्मल
***

अपना बनारस

निकला था
सारा शहर घूमने
जिसमें घूमने
सारा देश आ रहा है
विदेश आ रहा है
मगर यह नई बात नहीं है
नई बात है

शहर को अपूर्व किया जा रहा है

इसे नया रूप दिया जा रहा है
मगर इसके रस पर ध्यान नहीं है
जो सदियों से इसका प्रमुख तत्व बना रहा

उसकी जगह
पा महत्व रहा
विकासवादियों का
कोकाकोलाई जल्वा
***

क्या चाहूँ, कहाँ जाऊँ

घाट के किनारे बैठा
साइबेरियन पंछियों को देख रहा हूँ
और चेकोस्लोवाकिया के आदमी से
बतिया रहा हूँ

गंगा की डाल्फिन के बिना भी
पारदर्शी पानी के बग़ैर भी
अद्भुत है काशी
अद्भुत हैं घाट
पथरीले सौंदर्य से भरे

गुनगुनी धूप में ध्यानमग्न
बैठी हैं गाएँ
भारतीय संस्कृति की
पवित्र आत्माएँ

क्या चाहूँ
महत्वाकांक्षाएँ खोकर
कहाँ जाऊँ

यहाँ का होकर
***

मेहमान

दूध में नहायी
संगमरमर की प्रतिमा-सी
वह नहीं कोई भारत की बेटी है
बल्कि एक विदेशी लड़की
सुन्दर, उन्मुक्त
और गरिमायुक्त
जो आ लेटी है
हमारे सामने विशाल पत्थर पर
वक्षों को अपने उतान किये
उन पर
नरम-नरम धूप का
गरम-गरम आसमान किये

भारतीय जाड़े की
यह ख़ूबसूरत रुत
जैसे उसे भी

उसके बर्फ़ीले वातावरण से
बनारस में खींच लायी है
और साइबेरिन पंछियों की तरह
वह भी चली आयी है
गंगा किनारे
हवा में उसके सुनहले केश हौले-हौले उड़ रहे हैं

उसके गुलाबी कपोल गुलाबों से ज़्यादा खिल रहे हैं
मगर उसके वक्ष-पुष्पों के लिए
मुझे शब्द नहीं मिल रहे हैं
जिन पर फुदक रही है
एक तितली

वह सौंदर्य , शैली और स्वतंत्रता की
एक जीती -जागती तस्वीर है प्यारे
लेकिन उसे और निहारना इस तरह से
एक तरह की असभ्यता होगी छिछली

वह महान है
देश की मेहमान है
***

साइबेरियन परिंदे

परिंदों ने जान लिया
मौसम बदलने वाला है

बर्फ़ पड़ने वाली है
परिंदों ने जान लिया
कहां धूप खिली है
कहां गंगा बह रही है
अर्धचंद्राकार होकर

परिंदों ने जान लिया
और प्रस्थान किया

साइबेरिया से
और रूस, चीन, पाकिस्तान के
आसमान पार करते हुए
आ गये यहां
हिंदुस्तान में
जहां गंगा बह रही है
अर्धचंद्राकार होकर
और धूप खिली है
सोनल-सोनल

बिना पारपत्र के
साधिकार
बिना नक़्शे के
जिसकी उन्हें कोई ज़रूरत नहीं है
उनके लिए
कोई सरहद नहीं है
ग़ैर-कुदरती

वसुधैव कुटुंबकम्
समस्त धरती

खोज

बम्बई के
समुंदर तट
मुम्बई के
समुंदर तट

हो गये

और फिर
कुछ ऐसा हुआ कि
काशी के घाटों से गया
मित्र
फिर काशी के घाटों पर
लौट आया

काशी के घाट नहीं बदलेंगे
लेकिन काशी के घाट
क्या देंगे किसी को ?

अफ़सोस,
आदमी को
मस्ती और मुक्ति के अलावा भी
कुछ चाहिए
जिसे वह मुम्बई के समुंदर तट पर
छोड़ आया

मित्र
विश्व के नक़्शे में
खोज रहा है
वह स्थान
जहाँ मुम्बई के
समुंदर तट भी हों
और काशी के घाट भी

आइए
हम सब मिलकर
उसकी मदद करें
खोजने में !

वरुणा तट : शास्त्री घाट
इस नदी को
बहुत पहले चाहिए था
ऐसा घाट
खुले नाट्यांगन-सा
और विराट
जो इसे अब मिला है
चमकीले, चिकने पत्थरों का
यह भव्य कलात्मक ठाठ
जब यह कर रही है
अपना अंतिम लहर-पाठ

लेकिन, चलो कि इसके बाद
कम से कम यह घाट

दिलाता तो रहेगा इसके पानी की याद

जैसे ताजमहल
एक प्रेम कहानी की याद

इस समय बनारस में धूल
बनारस में

यह सूखे सावन का समय है
झुग्गियाँ उजाड़ी जा रही हैं
भवन गिराए जा रहे हैं
ग़रीबों को भगाया जा रहा है
गाँधीवादियों को खदेड़ा जा रहा है
इस समय बनारस में धूल
मडुआडीह की ओर से नहीं
राजघाट की तरफ़ से
उठ रही है
मगर किसी की जीभ
किरकिरा नहीं रही है

बुलडोजर और बन्दूक़
एक ही बात पर अड़े
विकास के लिए जगह चाहिए
विरोध के लिए वजह चाहिए
***

बाज़ार, गलियाँ, घाट

महीनों बाद मैं
इन बाज़ारों में आया हूँ

इन गलियों में
इन घाटों पर

सब कुछ एक साथ
इतना नया

और पुराना लग रहा है
गोया, मैं महीनों बाद नहीं
कई जनम पीछे से आया हूँ
और सेंट्रल जेल रोड से नहीं
साइबेरिया से
मेरे साथ
मेरे दो मीत हैं
इनके अलावा
वर्तमान और अतीत हैं
साथ चल रहे मेरे
अगल-बग़ल हुजूम है
सर्वदेशीय चेहरों का
मगर कहीं नहीं लंठई है
हमने पी रखी ठंडई है

हम देखी हुई गलियों में
भटक जा रहे हैं
गंगा को ठहरी
और घाट को चलता पा रहे हैं
हमें इल्हाम आ रहे हैं
बाज़ार में कबीर
हमीं है

मिलती रही मंज़िलों की खबर ग़म-ए- दौराँ की उदासियों से भी

शुभा द्विवेदी की कविताएं

कुछ सीखें बच्चों की बड़ों के लिए

कितना कुछ बचा लेते हैं

ये नन्हे-नन्हे हाथ:

धरती भर मानवता

अंबर भर संवेदनाएँ

वसंती हवा सी उदात्तता

बारिश भर स्नेह की फुहारें

दिये सी चमक आँखों की

खिलखिलाती मुस्कराती धूप सी हँसी

सपनीले इंद्रधनुष से सुनहले रंग

सुखद सपनों से दिन

बोझिल रातों की परछाइयों से विरक्तता

नाउम्मीदी में भी उम्मीदें,

आरज़ुओं की फ़ेहरिस्त

अन्तः करण की निष्पक्षता

मृगशावकों सी नाजुकता

सहज कौतुहलों से भरा सुंदर मन

तितलियों सी सौन्दर्यबोधी दृष्टि

चंचलता गिलहरियों सी

तरलता मछलियों सी

कितनी ही तदबीरों और

तरकीबों से

ये खींच ही लाते हैं हमें

शोक,दुख, भय के तूफानों

से बाहर

ठोकरें खाते, गिरते-पड़ते,

आगे बढ़ते और

प्रति पल कलाबाज़ियाँ दिखाते

करते हैं जीवन को सर्वविध आह्लादित

जीवन की नेमतों को सँजोना

कोई इन हुनरमन्दों से सीखे!

***

अनुभूतियां

खुलते बंद होते दरवाज़ों के बीच

झाँकती रही रोशनी की उम्मीद।

चलते रहे जिन रास्तों पर बेख़ौफ़ सालती रही

उन पर रुक कर ठहरने की टीस।

एक बदमिज़ाज उफनतीं नदी सी थी ज़िंदगी की रफ़्तार

गूँजती रही कमी पल पल बिछड़ते रिश्तों की।

घने अरण्य में दमकते जुगनूओं सी

कोई तस्वीर उभरती रही किताबों के पन्नों पर।

मन के कोलाहल में रिसती रहीं कुछ यादें

झकझोरती रहीं शोख़ गुलाबों की ख़ुशबूएँ ।

उठते बढ़ते कदमों के बीच सिमटती रही ज़िंदगी

जादू और तिलिस्म से भरी दुनिया में खलती रही कमी सूरज की।

ज़िद थी ख़ुद से ख़ुद तक पहुँचने की

मिलती रही मंज़िलों की खबर ग़म-ए- दौराँ की उदासियों से भी

मेरे शहर का मौसम पतझड़ है

धीरे-धीरे नहीं,

और न ही किसी सुगबुगाहट के साथ

बल्कि,

मेरे शहर की सुबह होती है

एक धक्के से !

भाग-दौड़, थकान

ऊब, घुटन और कमतरी से भरा जीवन

जब अनायास

सकपकाते हुए लंबी लंबी

अलसाई सड़कों पर पसर जाता है

पौ फटते ही छात्र मज़दूर कलाकार

पेशेवर और बेरोज़गार

अपनी मजबूरियों और ख़्वाहिशों का बोझ लादे

टंग जाते हैं बसों, मेट्रो, ऑटो और साइकिलों के हत्थों से

शहरों के किनारे फूट पड़ते हैं

दूर दराज़ से बसों, ट्रकों, ट्रेनों, टेम्पो से

आयातित

फल-सब्ज़ियों, भीड़, सामान और

विचारों को संभालते-सहेजते
धूल धुएँ गंदगी से धूसरित हो चुकी
इस शानदार शहर की भव्यता

क़िले, गुंबद, ऊँची-ऊँची मीनारों

और टीलों से छुपकर झाँकती

कोपलों में बयाँ होती है
दिन चढ़ते सर चढ़कर बोलने लगती हैं
लोगों की परेशानियाँ, ग़ुस्सा और लिप्साएँ

सांसारिकता और उपभोगवाद की मीठी नींद में
डूबा यह शहर

बेसुध हो उठता है भूकंप तूफ़ान और

बेमौसम की बारिश की आहट मात्र से

इस शहर की रफ़्तार, शोर और अंधेरों के बीच

एक नदी अपने होने की संभावना तलाशती,
बिसूरती है

जटिल आंकड़ों के संचयन

जीर्ण शीर्ण विरासत के संरक्षण

और हाशिये पर खड़े लोगों के स्वाभिमान और

सुरक्षा को सुनिश्चित करने का दम्भ भरते

तंत्र में साँस फूँकता यह शहर
रोता है किसी ग़ालिब ख़ुसरो और

निज़ामुद्दीन की ग़ैरमौजूदगी को
मरम्मत और पहचान को तरसती

आसमान के नीचे की यहाँ हरेक चीज़

यह एहसास दिलाती है कि

सुबह से शाम तक दौड़ते-फिरते शहर के

कभी न ख़त्म होने वाले घुमावदार रास्तों में

आत्मीयता और ईमानदारी खोकर रह गये हैं
कभी रोबदार रहे नीम बरगद

अशोक के पेड़ों की जगह

उजाड़ ठूँठों और बोनसाई ने ले ली है

मुसाफ़िरों और ख़ुशनुमा फ़िज़ाओं के

पैग़ाम लाने वाले परिन्दों की बाट जोहते पेड़ों के

ख़ाली कोटरों में अब हवा भी नहीं टिकती

तमाशबीनों से भरा यह शहर हरेक दिन

एक नई संगीन वारदात को

एक नई संगीन वारदात को
ओढ लेता है

और अपने ईमान पर तमाम चोटों ज़िल्लतों को

बर्दाश्त कर के भी

ज़िंदा रहने की मिसाल कायम करता है
शाम होते ही बच्चे औरतें और वृद्ध

थके माँदे पशुओं की तरह
दिखते हैं गुमसुम असहाय और चुप
फिर कहीं शहर के बीचों-बीच से उठते

आरती अज़ान और गुरबानी के साझे मिले जुले
स्वरों में
डूबता जाता है
सुबह का सूरज
इत्मीनान से
और साथ ही सिमटने लगते हैं

दरख्तों, नीड़ों, फुटपाथों
कोनों, बरसातियों और ठेकों में

बेचैन और बेसब्र लोग
भूख और आजीविका की जद्दोजहद से
निकलकर
अपने ज़िंदा बचे रहने के क़िस्से बाँटते

अपनी धमनियों में अपनी मिट्टी से

बिछोह की कसक को महसूस करके भी

अपने वजूद को

इंडिया गेट पर

चाँद पर पहुँचने के जश्न

सुधरती जीडीपी और तमाम विनिंग मोमेंट्स

से फ़ील गुड कराते
तारों, फूलों और गाँव-वतन से आती

ख़ुशबूओं से सराबोर करते

इन्तज़ार करते
पतझड़ के बाद
आने वाले वसन्त का...

***

डाली पर झुका गुलाब तुम्हारी स्मृति में खिला है

सीमा सिंह की कविताएं

आश्वस्ति

बसंत के माथे पर खिलते फूलों को देख

लौट लौट आती हैं तितलियाँ

जबकि पूस की रातों में जुगनू नहीं लौटते

ऋतुएँ ले आती हैं अपने साथ मौसम का गुड़

बिछड़ गए पत्तों की उम्र किसको पता भला

कोंपलें भले ही लौट आए अपने समय पर

सारी गिलहरियाँ कहीं नहीं जाती

वे अपने ही ठिहे पर लौटती हैं

डाली पर झुका गुलाब तुम्हारी स्मृति में खिला है

या साथ न जा सकने की बेबसी में

काँस जंगल में खिले या आँखों में

अपेक्षित था उसका उजला होना

इच्छाओं की सीमा कैसे तय हो भला

वे कितनी थोड़ी थीं और रास्ता लम्बा

फिर भी दुनिया सीने पर सवार रही

लौटने के सभी उपक्रमों में ज़्यादा नहीं

चाहिए थी तो बस एक आश्वस्ति !

***

एकालाप

1)

स्मृति में होती है बारिश

और भीग जाती है देह

कोई सपना आँखों से बह निकलता

प्रतीक्षा के घने जंगलों में

पुकारे जाने के लिए ज़रूरी था

किसी आवाज़ का साथ होना

कोई न सुने तो अकेलापन

और घहरा उठता है !

2)

कानों में गूंजती हैं अभी भी की गई प्रार्थनाएँ

जुड़ी हथेलियों के बीच

जो लौट लौट आती

मूल्य चुकाने से चुक जाता दुख

तो अनुक्षण बना रहता सुख

भाषा में रचे गए विलोम

जीवन में अक्सर पर्यायवाची की तरह मिले

कोई शब्द अर्थ से परे मिला

तो खोजा किए रात दिन सात आसमान

पर जा चुके को पकड़ा नहीं जा सकता

खोल कर मुट्ठी बिखेरा जा सकता है हवाओं में !

***

बालियां

एम आर आई को ले जाते समय जब नर्स ने

आग्रह किया माँ के कान से बालियाँ निकालने का

तो एकपल को भीतर तक डूब गई

सोचती रही कैसे निकालूँ उसकी बालियाँ

कि उम्र के पैंतालीसवें बरस तक उसे जब भी देखा

बालियों के साथ देखा

जीवन तप जाए तो कुन्दन हो जाता है

बालियाँ इस बात की अकेली गवाह रहीं

वे उसके जीवन में वैसे ही समाहित रहीं

जैसे देह के भीतर परछाई

एक बालियाँ ही थी जिसने कभी नहीं छोड़ा उसका साथ

वे सौभाग्य की तरह उसके कानों में चमकती रहीं

जब पिता नहीं रहे तब भी

मैं आहिस्ता से चाह रही थी निकालना बालियाँ

ताकि अहसास न हो ज़रा भी उसे अपने सूने कानों का

पर लगाते ही हाथ वह चेतन हो उठी

स्ट्रैचर पर उसके नंगे कानों को देख रही तो लग रहा

कि किसी ने अनावृत कर दिया अचानक से

उसका जीवन यूँ सबके सामने

यहाँ इतनी भीड़ भाड़ इतनी चहल पहल में

किसी को क्या ही मतलब उसके सूने कानों से

पर उसकी आँखों में उतर आया है एक युग का सूनापन

मैं उसके चेहरे को देखती हूँ और आँखों की कोरों को

छुपाते हुए कोई पुराना क़िस्सा सुनाती हूँ

वो मुस्कुराने भर का सुन लेती है मेरी बात

और अपनी ठिठुरी उँगलियों से छूती है अपने नंगे कान

एक आँसू ढुलक पड़ता है उसकी आँख से

होठ धीरे से बुदबुदाते उठते हैं

“करम गति टारे नहीं टरे “

मैं शब्द शून्य क्या दूँ जवाब उसकी बात का

चुप बस देख रही उसे जाते हुए मशीन के भीतर

मुट्ठी में दबाए उसकी दोनों बालियाँ !

***

विस्थापन

छोड़ दी गई जगहें स्मृतियों का बसेरा होती हैं

विस्थापन उनके हिस्से भी आता है

वे एक जगह से दूसरी जगह के बीच की दूरी में

तय करती हैं सदियों का फ़ासला

ख़ाली कह देने से ख़ाली कहाँ होता है कुछ

रात के गहन अंधकार में जब सो जाता है अधिकांश

तो सपने निकल पड़ते हैं नींद की यात्रा में !

***

शहर से गुज़रना तो सिर्फ तुम्हारी याद से गुज़रना था

पंखुरी सिन्हा की कविताएं

स्मार्ट सिटी की होड़ में

स्मार्ट सिटी की होड़ में
स्मार्टनेस की अंधी दौड़ में
बहुत से शहरों ने कत्ल किए
अपने फूलते फलते पेड़
उजाड़े बचे खुचे बाग
इन सबमें शायद उन्हें
दिखता हो जंगल
या जंगलीपन
और मेट्रो सिटी की म्युनिसिपेलिटी का
वाकिंग ट्रेल्स वाला
सरकारी पार्क
यहाँ आया नहीं

और अंदर की बात यह है
कि घोषित हो जाने के बाद स्मार्ट
बंद कर दिया
कईओं की कचड़ा गाडी ने
अपना काम
यहाँ कुछ मेयर के चुनाव की भी राजनीति थी

उनमें से कई आये गए
किन्तु किसी से न महसूसी
पेड़ों की अनुपस्थिति

अलबत्ता गायब पेड़ों में
कभी खिलने वाले रंग
बनकर परिधान
टंग गए तिमंजिले
चौमंजिले माल्स
की दुकानों में
और झाँकने लगे
शीशे के झरोखों से राहगीरों को

फिर मैनेक्वींस भी आये
उन्होंने मॉडलिंग शुरू की
और बड़ी हुई दुकानें

माल्स में बाकायदा
एक फ़ूड कोर्ट खुला

वाक़ई मॉल के हर माल ने लूटा
लोगों का दिल
शहर के बड़े बाबू से लेकर

छोटे थानेदार तक ने
बढ़ा दी रिश्वत की रकम

इधर विस्थापित पक्षी
जो खाली जगहों पर अंटके थे
चकित हुए
जब खिंचने लगीं दीवारें
इर्द गिर्द
दरअसल, शहर की
हर ज़मीन की एक कथा थी
वे सब किसी न किसी की संपत्ति थीं
बिकाऊ थीं
उन्हें बसना था
उनके खाली रहने में कहीं न कहीं
एक उजाड़ था

लेकिन, यह क्या हुआ?
शहर से गुज़रना
तो सिर्फ तुम्हारी याद से गुज़रना
था.....
***

कौन सा गीत?

वो कौन सा गीत है

जो इस भयानक, ठंढे

बर्फीले, दिन को तब्दील कर देगा

चमकते हुए, सूरज की खनखनाती हुई

रोशनी में

बगैर तुम्हारे नाम के

बिना तुम्हारे नाम का

कोई गीत?

***

शर्तें, वज़ूद और संशय में प्रेम

क्यूँ नहीं है, मेरी सुबह, मुक़म्मल

ख़ुलूस भरी

हासिल कर लेने के बाद तुम्हें

फतह कर लेने के बाद तुम्हें

तुम्हारे दफ्तर चले जाने के बाद

तुम्हारी शर्ट में नायाब तहें लगाती हुई

चूड़ियों भरे हाथों से अपने

या देती हुई, धोबन को घर भर के कपड़े

कैद तुम्हारी शर्तों में

कैद पूरी तरह?

क्यूँ है सुबह इतनी निस्पंद?

जैसे कहीं और बसे हों सारे स्पंदन?

क्यूँ है सुबह इतनी सर्द बेजान?

इतनी ठंढी खामोश?

क्यूँ है ऐसा सन्नाटा?

जैसे छाई हो शहर भर में मुर्दनी?

क्यूँ सुनाई नहीं देती हैं?

मुझे मेरी सांसें?

और क्यूँ न सुनने पर लग रहा है

की चलती नहीं हो मेरी सासें?

कि रुकने को आयीं मेरी सांसें

क्यूँ तुम्हें हासिल न कर

खुद को पाने में हैं खोई

मेरी सुबहें?

एक कवि और करता क्या है दरार की नमी बनने के आलावा

शंकरानंद की कविताएं

नदी का पानी

(अरुण कमल के लिए)

पहाड़ से गिरता हुआ पानी नहीं जानता कि उसे जाना कहाँ है
वह मिठास और चमक के साथ फांदता है मिट्टी की तरफ
जहाँ से प्यास की भाप उठती है गंध में
सूखी फटी मटमैली गंध
दसो दिशाएं उसकी देह की दरार से कांप जाती हैं
एक कवि और करता क्या है दरार की नमी बनने के आलावा
उसे घास चाहिए अन्न चाहिए अदहन चाहिए हर एक मनुष्य के लिए
रोटी की महक चाहिए भूख से मरते हुए लोगों की पृथ्वी पर
नींद और स्वप्न तो जिन्दा रहने के बाद की जरूरत है
उससे पहले ही सब कुछ रौंद नहीं दे कोई
कवि का दुःख एक कुदाल का दुःख है
जो गलने के लिए मजबूर है आग की भट्टी में

बचने के तमाम उपाय अंततः पराजित करने वाले हैं

कवि बचना नहीं चाहता पहाड़ से गिरना चाहता है
पूरी पृथ्वी पर फ़ैल जाने के लिए
बनकर भाप पिघल कर पानी
***

लोकगीत

(रामज्योती देवी के लिए)

गाँव भर में एक आवाज गूंजती है हर अवसर पर
गूंजता है लोकगीत
कांपते हुए कंठ से बिखरती हुई आवाज़
जो खनकते हुए फ़ैल जाती है मीलों दूर तक
आवाज़ जो किसी कोने से उठ सकती है
उठती है तो न जाने कितनी आवाज़ और
जुड़ जाती है एक साथ लय में
न जाने कितनी मिठास और घुल जाती है हवा में

अस्सी वर्ष की उम्र
अस्सी वर्ष का अनुभव
अस्सी वर्ष का संगीत
पके फल की गंध जैसे कोई दीवार नहीं मानती
वैसी ही है आवाज़ वैसा ही है लोकगीत
शोर से भरी पृथ्वी पर कर्कश है संगीत जो इन दिनों
बढ़ा देता है धड़कन की गति
बेचैन मन को शांति चाहिए जो मुश्किल से मिलती है

ऐसे में तुम कैसे बचा कर रखती हो अपनी आवाज़
अपना संगीत
ओ रामज्योती देवी!
तुम कैसे बचा पाओगी अपना लोकगीत!
***

खिड़कियां

(रघु के लिए)

दीवार के बीच खिड़की खोल देने की उसकी कला चकित करती है
वह बहुत बारीकी से कर देता है यह काम
रच कर बना देता है पत्थर के बीच हवा का रास्ता
पूरा असमान जो टिका था इस पार
अब आ गया खिड़की के पल्ले पर
खिड़कियाँ किसी किसी की जीने की वजह बन जाती हैं
खासकर वे स्त्रियाँ जो चौखट के बाहर निकल नहीं पातीं
रघु उनके लिए देवता है बचा लेता है दम घुंटने से

फोन नंबर

(पिता के लिए)

पिता को गए चार साल हो गए

अब न उनकी आवाज़ सुनाई पड़ती है
न मैं कुछ पूछ पाता हूँ कि कैसे हैं
वे इस पृथ्वी पर नहीं रहे
उनका नंबर लेकिन मेरे फोन में अब भी मौजूद है

नंबर के साथ उनकी तस्वीर भी है जो
खींची थी कई साल पहले
पहले अक्सर बात करता तो नंबर सामने ही रहता
कांपता है कलेजा अब
अगर निकल आये नंबर सामने
उस नंबर को मिटाने की हिम्मत नहीं हुई
जब कभी उनका नंबर निकल आता है तो
यही लगता है कि
अगर फोन लगा दिया तो कितनी तकलीफ होगी
जब उधर से पिता नहीं
किसी और की आवाज़ गूंजेगी
वह नंबर किसी और का हो चुका होगा
यह तय है
लेकिन मन नहीं मानता
जैसे मन नहीं मानता कि
पिता नहीं रहे!
***

फिलहाल तो उसके हाथों में लग गया है सिसौंण

हरि मृदुल की कविताएं

बौज्यू

कब से कह रहे थे कि
गांव ले चलो
ले चलो गांव बस एक बार
इसे मेरी आखिरी बार की ही यात्रा समझो
लेकिन नहीं सुनी किसी ने
एक नहीं मानी
बौज्यू बड़बड़ाते रहे
खुद से बातें करते रहे
बात नहीं समझी किसी ने

तो एक दिन सुबह-सुबह निकाली बौज्यू ने
एक बहुत पुरानी एलबम
देर तक एक-एक तस्वीर निहारी
आखिरकार खोज ही लिया पहाड़ की धार में खड़ा
बाट जोहता वह पुश्तैनी घर
पुरखों का घर!
आह! आंखों में आ गई एक अलग ही चमक
उन्होंने एकबारगी इधर-उधर देखा
फिर चुपके से इस घर की सांकल खोली

और बेझिझक घुस गए इस जर्जर घर में

अब सभी ढूंढ़ रहे कि कहां गए बौज्यू
कहां चले गए इतनी सुबह
न नाश्ता किया
न दवाइयां खाईं
दोपहर होने को आई
किसी को कुछ बताकर भी तो नहीं गए
हद है, पिता आखिर चले कहां गए

उधर, बौज्यू ने अंदर से चिटकनी लगा ली कि
कोई दखल न दे
कोई दिक्कत न पैदा करे
कोई विघ्न न पड़े एकांत में!

घर के लोग बाथरूम में देख रहे
एक रूम से दूसरे रूम जा रहे
बाल्कनी में खोज रहे
छत पर जाकर ढूंढ़ आए
आस-पड़ोस में पूछ रहे
गली-सड़क घूम लिए
कहीं भी तो नहीं मिल रहे बौज्यू

कहां से मिलेंगे बौज्यू
वो तो पहाड़ के अपने पुश्तैनी घर के उस गोठ में
आराम फरमा रहे
जिसमें उनका बचपन बीता

14. बौज्यू – कुमाउंनी में पिता को बौज्यू कहते हैं

- धार – पहाड़ की चोटी
- गोठ – मकान का नीचे का कमरा

***

सिसौंण

दसेक साल बाद आया होगा गांव

यूं अब तक दिल्ली में ही मौज मनाता रहा

मसान लगा हो जैसे

जंगल-जंगल घूम रहा है

पता नहीं किन-किन पौधों-पेड़ों की

पत्ती, टहनी, जड़ें इकट्ठा करता

कहता है इनसे ही करोड़ों कमाएगा

आज ले आया है बोरा भरकर बिच्छू घास

जिसे पहाड़ में सिसौंण कहते

बताता है – इसे सुखाकर चूरन बनाएगा

एक फंकी से डायबिटीज में आराम

दूसरी से ब्लडप्रेशर कंट्रोल

फिलहाल तो उसके हाथों में लग गया है
सिसौंण

जैसे बीसियों बिच्छुओं ने एक साथ मार दिए हों
डंक

सो, मारे दर्द के बिलबिला रहा है

पूछता फिर रहा है गांव के सयानों से

किस विधि मिले इस पीड़ा से छुटकारा

क्या चुपड़े हाथों में, किससे कौन सा लेप मांगे

कि जल्द से जल्द खत्म हो यह दर्द

और फिर वह दिल्ली भागे

***

गुनि-बांदर

इस बार तो विडियो ही बनाकर भेज दिया जगू
ने

जगू मेरा चचेरा भाई – जगदीश

खंडहर बनने जा रहा पुश्तैनी घर

पाथर टूट रहे-छत से छूट रहे

सड़ चुके दरवाजे

झड़ चुकी खिड़कियां

गुनि-बांदरों ने डेरा डाल दिया है घर में

'आ जाओ हो – एक बार पहाड़

घर अपने

देखभाल कर जाओ हो'

ह्वाट्ऐप विडियो में बड़े आर्त्तस्वर में कह रहा था
भाई...

मुझे हाथ जोड़े उसने

फिर लगाई एक जोरदार हांक

काले मुंह के गुनियों यानी लंगूरों को

और लाल पिछवाड़े वाले बंदरों को – हेहेहेहे
होहोहोहो...

मैं देख रहा था विडियो में कि

कोई असर नहीं पड़ा गुनि-बांदरों पर इस हांक
का

मैं जरूर डर गया

हो सकता है कि यह हांक मेरे लिए ही हो!!

बारह बरस बीते

पहाड़ नहीं जा पाया

हालांकि हर साल ही कहता रहा –

इस साल तो जाना ही है हर हाल!

बारहवें फ्लोर पर मेरा फ्लैट

उसी को सजाने में लगा रहा इतने बरस

उधर पुश्तैनी घर का एक-एक पाथर

गिरता रहा-टूटता रहा...

मैं विडियो में बड़े गौर से देख रहा

गांव के गुनि-बांदरों को

फिर देर तक सोचता रहा –

बसों में लटकते

लोकल ट्रेनों में धक्के खाते

सड़क-सड़क भटकते

बीत गया कितना तो वक्त

रीत गया सारा बल

इस बंबई में हम भी एक तरह से

गुनि-बांदर ही तो हुए

***

हिसालू

जैसे सोने के कनफूल

डाली-डाली ने पहने

किसने पहनाए होंगे इस जंगल में

इन पौधों-इन पादप को

इतने-इतने गहने

हजारों कनफूल-हजारों गहने

सम्मोहित सा खड़ा रहा

कितनी ही देर

फिर हल्के से छुआ एक कनफूल

तो जैसे जादू ही हो गया

वह तत्काल हिसालू बन

टपक पड़ा हथेली में

एक अलग ही दिव्य फल

अहा! इस अमृत फल का स्वाद अब

मैं चख ही लूं

स्मृति में जतन से

रख ही लूं

***

मालू

कैसे चढ़ी होगी मालू

इस कांठे में

कितनी घास थी

जो उसे काटनी थी

महीनेभर पहले ब्याई गाय के सामने

आखिर कितनी घास डालनी थी

कहीं उस बछड़े के लिए तो नहीं चढ़ी थी इस कांठे में

जो अब कोमल पत्तियों पर मुंह मारने लग गया है

भूल गई थी कि उसका भी तो छह माह का एक बच्चा है

एकदम बछड़े जैसा

जिसे देखते ही उसकी छाती में दूध उतरने लगता था

इतनी ऊंचाई से जब गिरी होगी मालू

तो बच्चे का ध्यान आया ही होगा

भला कौन यकीन करेगा कि

बस मुट्ठी भर घास के लिए मरी मालू

मौत से नहीं डरी मालू

***

ओ राजुली

दूर पहाड़ में तेरा घर

सबसे ऊंची डांडी के पीछे

मैं यहां बंबई में समंदर किनारे

सबसे ऊंची बिल्डिंग के नीचे

ओ राजुली! रहना राजी-खुशी
मैं तुमसे मिलने जरूर आऊंगा
तुम्हें कुछ हो गया तो
इस समंदर में डूब जाऊंगा

***

एक पेड़ था

पहले यहां एक चौड़ा खेत था
जहां यह सड़क पहुंची है
यहीं एक पेड़ भी था खूब घना
छाया देता - हवा देता - झपकी वाली नींद देता

अति उत्साहित हो गांव के एक अधेड़ ने
गिरवा दिया इसे भीमकाय जेसीबी मशीन से
कि दिल्ली, लखनऊ, चंडीगढ़ और हल्द्वानी
वालों की कारें जब आएंगी
तो कहां खड़ी होंगी?

एक-दो बार ही आईं वे कारें
वे परिवार
दशकों पहले छोड़ दिया था जिन्होंने
गांव का अपना घर-बार
अब न पेड़ है
न ही कई कलर की वे चम-चम कारें
अलबत्ता तेज हवा चलती है
बस सांय-सांय है...!

***

हंस - परान

बीत चुकी एक उमर
न मां रहीं, न पिता
वह पैतृक घर भी हो चुका अब क्षीण-जर्जर
फिर भी जाने क्यों पहाड़ ही लगता
अपना असल थान
उसी ओर उड़ पड़ने को हैं हंस-परान

कैसी तो यह मया जगी

नराई लगी

लगी कैसी तो आस

बंबई से आया हूं

युगों का प्यासा

अब नौले के तुड़-तुड़ पानी से

बुझेगी मेरी प्यास!

- नराई – याद/ प्यार
- नौला – छोटा सा जलाशय

***

सफेद धुआं बन जाने से पहले, वह जी लेना चाहता हो हर रंग

रंजना जायसवाल की कविताएँ

सेमल का फूल

चैत के महीने में

बिखरे घमाते

सेमल के फूल

अलसाये उनींदे

फिर भी मुस्कुराते

सेमल के फूल

लाल इतने

मानो
गोरी के गालों

पर उतरा रंग

नवविवाहित की हथेली

पर लिखा

प्यार का कोई छंद

पश्चिम में डूबता

दिन का अवसान

मानो दूर कहीं

थक कर

फागुन करता आराम

सड़क की
पथरीली धूप में

बिछा अपनों के इंतजार में

मानो खोली हों आँखें

किसी नवजात ने

सफेद धुआं बन जाने से पहले

वह जी लेना चाहता हो हर रंग

शायद इसलिए समेट लेता है

वह बादलों को अपने आगोश में

गाड़ियों का कोलाहल

तेजी से गुजरते

राहगीरों का हुजूम

भागती जिंदगियाँ

फिर भी क्षण भर

रुकती, तकती

भरती उस रंग को

अपनी आँखों में

और बढ़ जाती

अपनी मंजिल की ओर

और रह जाता

बस सेमल का फूल

***

औरतें नहीं जानती थी

औरतें नहीं जानती थी

उनके घर के पुरुष

उनसे कितना प्रेम करते हैं

वह बुनती रहे

उनके साथ जीवन बिताने के सपनें

गुनती रही एक सुनहरे भविष्य को

कोख में पालती रही उनके वंश को

और वह खर्च करते रहे

छोटे-बड़े झगड़ों में

उनके नामों को

वह सड़कों पर

घसीटी जाती रही

हर छोटी-बड़ी बातों पर

किसी ना किसी रूप में

वे खर्च करते रहे

उनके वजूद को

हर तिराहे, चौराहे और मुहल्ले पर

और देते रहे

अपने पुरुष होने का परिचय!

सचमुच! औरतें नहीं जानती थी

उनके घर के पुरुष

उनसे कितना प्रेम करते हैं?

***

स्त्री मन

चूल्हे की धधकती

हुई आंच में रखा

एक पतीला

मानो मन हो स्त्री का

जिसे कसकर ढक दिया हो

समाज के रीति-रिवाजों से

मन की इच्छाएँ, सपनें और अरमान

खदबदाते हैं

निकल जाना चाहते हैं

तोड़ कर बंदिशों की गिरहों को

पर सधे हुए हाथ

उतनी ही तेजी से ढक देते हैं

उस पतीले को

मानो चेताना चाहते हैं उसे

घुटती, कसमसाती,तड़पती

स्त्री का मन छलक आता है

पतीले की कोर से

और बिखर जाती है

उसकी सोंधी खुशबू

सारी फ़िजा में

सधे हुए हाथ

फिर से लकड़ियाँ

ठूस देते हैं चूल्हे में

और छोड़ देते हैं उसको

उसकी तपिश में तपने के लिए

और उसके अरमानों की राख

वही दम तोड़ देती।

***

कठपुतलियां

सुर्ख गोटेदार कपड़ों में

वो नाचती

और दम्भ से

उन नचाने वाले हाथों के

चिथड़े में लिपटे तन को देखती

उनका वजूद कहीं...

उसकी उंगलियों में समाहित हो जाता

महीन धागों से वो

उसे जैसा चाहता नचाता

नहीं जानता था वो...

नचा तो उसे भी रहा था कोई

बस धागे अलग थे

और हाथ भी

वो हाथ

फेंके हुए उन सिक्कों की

चमक से चमकदार हो जाते

पर काठ की उन बुतों की

बड़ी-बड़ी कजरारी आँखों में

अनदेखे आँसू भर आते

खेला दिखाकर

बन्द कर दी जाती वो

सन्दूकों में

स्याह अंधेरे के बीच

पर नहीं जानती थी

बाहर का अंधेरा

अंदर से ज्यादा गहरा है।

आज कठपुतलियाँ चुप थीं

चुप थे वे धागे भी

और उन धागों को

उंगलियों में लपेटने वाले हाथ भी

क्योंकि...

उन धागों को

खींचने वाले हाथों की डोर...

बेरहमी से खींच लिए थे

उस अदृश्य शक्ति ने

आज मृत्यु सिर्फ

एक की नही हुई थी...

पर सफर यहीं खत्म नहीं होता

कठपुतलियाँ फिर नाचेंगी

बस उनके कपड़े बदले हुए होंगे

और नचाने वाले वो हाथ भी

पर जो नहीं बदलेगा वो होंगे वो धागे

क्योंकि...

उनकी नियति यही है।

***

पुरूष कंजूस होते हैं

पुरुष कंजूस होते हैं

सही सुना आपने

पुरूष कंजूस होते हैं

खर्च नहीं करते

वो यूँ ही बेवज़ह

अपने आँसुओं को

क्योंकि उन्हें बताया जाता है

बचपन से

तुम मर्द हो

और मर्द को कभी दर्द नहीं होता

वे खर्च नहीं करते

अपने जज्बातों को

क्योंकि उन्हें सिखाया जाता है

तुम कमजोर नहीं हो

क्योंकि ये काम है औरतों का

वे टूट नहीं सकते

जिंदगी की जद्दोजहद से

क्योंकि उन्हें सिखाया जाता है

ये काम है कायरों का

सहेज लेते हैं

वो अपनी आँखों में

छिपा देते हैं मन की किसी दराजों में

क्योंकि वे बेवज़ह खर्च नहीं करते

अपने अहसासों को

सचमुच...

पुरूष बहुत कंजूस होते हैं।

***

कैसी रही होगी वह भूख,कैसा रहा होगा वह अभाव

महेश पुनेठा की कविताएं

अभाव कथा

कैसी रही होगी वह भूख

कैसा रहा होगा वह अभाव

जिसके चलते

टोकरी में काफल कम देख

एक मां ने इतना पीट दिया बेटी को

मौत हो गई उसकी

दूसरी सुबह जब

पता चला कि धूप से मुरझाकर

कम हो गए थे काफल टोकरी में

पछतावे में डूब

मां ने भी कर ली आत्महत्या

लोककथा कहती है

कि दोनों चिड़िया बन गईं

आज भी चैत के महीने

काफल वन में बोलती हैं जो

काफल पाको मैं नि चाखो

मां कहती है

हां हां त्वी नि चाखो।

जब भी सुनता हूं ये आवाजें

मन उदास हो आता है

लेकिन सुकून होता है

चलो वे दुबारा मानुषी नहीं बनीं

अच्छा ही किया लोककथाकार ने।

बसंत वन में हाहाकार

अभी अभी तो वन में

बसंत का उत्सव

शुरू हुआ था

रंग बिरंगी परिधान पहन

बांज बुरुंश काफल फल्यांट.....

सजे धजे खड़े थे

वन मुर्गी,तीतर बटेर,न्यौली, काफुवा.....

चहकर उनके कंधों पर चढ़े थे

काकड़, घुरड़,मलपुशी,शावक....

इधर से उधर कूद फांद रहे थे

रंगों, गंधों,ध्वनियों का

कोई पारावार नहीं था

इतना निर्मल

इतना कोमल

इतना रंगीन

इतना संगीतमय

हर सहृदय को

अपने पास बुला रहा था

न जाने किस कोने से

एक चिंगारी भड़की

देखते ही देखते इधर से

जीभ लपलापती आग

उधर तक पहुंच गई

अनगिनत घरों

उनमें रहने वाले बच्चों

और उनकी माताओं को

लीलती चली गई ।

जो भाग न सके

कुछ झुलस गए

कुछ जली लाश में बदल गए

कुछ राख हो गए

पानी तक जल गया

हवा आग के साथ हो गई

चड़... चड़... चड़... चड़... तड़..तड़
..तड़...तड़...

बड़े बड़े पेड़ टूटकर गिरने लगे

छोटे छोटे पौधों और घास पात की क्या कहें

मिट्टी पत्थर तक

अपनी जगह छोड़

घाटी को भागने लगे

आसमान धुंए से भर गया

देखते ही देखते

एक उत्सव हाहाकार में बदल गया

जहां अभी अभी बसंत आया था

वहां जले ठूंठ ,लाशें, राख,कालिमा

और दु:ख,क्रंदन,श्मशानी नीरवता, स्तब्धता के अलावा कुछ नहीं बचा।

***

वर्चस्व की चाह और झूठ

लोग बताते हैं कि

उसकी असली मां गांव में रहती है

यह भी बताते हैं कि जिसे वह अपनी मां कहता है

कुछ साल पहले तक दीदी कहता था उसे

जवानी के दिनों जहां जहां वह

नौकरी में पोस्टेड होती

वह उसके साथ साए की तरह रहता था

वह किसी नौकरी में नहीं है

लेकिन जब भी कहीं को जाता दिखे

या कहीं से आता दिखे

बिना पूछे ही कह देता है

कार्यालय को जा रहा हूं

या कार्यालय से आ रहा हूं

बिना प्रसंग के

आपसी बातचीत में कार्यालय का जिक्र अवश्य ले आता है

रौब गांठने के लिए

खुद को एक बड़ा अधिकारी बताता है

खुद को हर वक्त व्यस्त दिखाता है

जैसे सारे देश का बोझ उसी पर हो

यह दूसरी बात है कि

अक्सर चौराहों पर खड़ा

गपशप करता पाया जाता है

बातों में ईरान तुरान की फेंकता रहता है

उसे कभी किसी ने उसके कार्यालय में नहीं देखा

बचपन से लेकर अब तक की करामातों के

किस्से ही किस्से रहते हैं उसके पास

अपना प्रभाव जमाने के लिए

बढ़ा चढ़ाकर सुनाता रहता है उन्हें

भांति भांति की पोशाकें पहनने का शौक रखता है

आत्मीयता जताने को

किसी के भी गले लग जाता है

मुहल्ले में किसी का कोई काजकाम हो

या किसी का कोई निर्माण कार्य चल रहा हो

यह कहने में देर नहीं लगाता कि

जब भी कोई आर्थिक जरूरत हो

जरूर बताना

मेरे पास तो लाख दो लाख हर समय जेब में रहते हैं

लेकिन वक्त जरूरत पड़ने पर

पानी तक देने में आनाकानी करता है

अपने से कमजोर को हमेशा दबाकर रखता है

पुलिस प्रशासन को अपने जेब में समझता है

स्त्रियों को पुरुषों से कमतर मानता है

अल्पसंख्यकों पर धौंस जमाता है

पुरानी रीति रिवाजों और मान्यताओं का अंधसमर्थन करता है

और बातें हमेशा लोकतंत्र की करता है

खुद को बहुत पढ़ा लिखा बताता है

दुनिया का कोई भी प्रसंग क्यों न हो

उसके पास कहने के लिए कुछ न कुछ रहता है

चाहे कुछ भी न हो पता

तब भी तुक्के मार देता है

किसी भी व्यक्ति या स्थान की बात हो रही हो

उसके साथ अपना पुराना परिचय जोड़ देता है

जिस महफिल में खड़ा हो जाय

उसी को लूट लेता है

यह जानते हुए भी

कि वह झूठ बोल रहा है

विश्वास नहीं होता है

कि झूठ बोल रहा है

कोई कलाकार

फिल्म में भी नहीं बोल पाता होगा

इतनी सफाई के साथ झूठ

बहुत सारे लोग सच भी नहीं बोल पाते हैं

इतने आत्मविश्वास के साथ

उसे यह भी नहीं लगता है कि

सामने वाले उसके झूठ को पकड़ भी सकते हैं

या सबको पता है कि वह फेंक रहा है

एक झूठ के बचाव में

उसके पास हमेशा सौ झूठ तैयार रहते हैं

झूठ बोलते हुए ऐसा आत्मविश्वास

या तो मूर्खता से पैदा हो सकता है

या धूर्तता से

वर्चस्व का एक बड़ा हथियार है झूठ

इतिहास में एक तानाशाह था

सुना है वह बोलता था झूठ

पूरे आत्मविश्वास के साथ

उससे मिलती हैं इसकी बहुत सारी आदतें

कुछ कुछ चेहरा भी

डर लगता है इसके आत्मविश्वास को देखकर।

***

पाँच लघुकथाएं

सुनील गज्जाणी

पानी

"यूँ एक टक क्या आकाश को ताक रहे हो?"

"नहीं, बादलों को!"

"मगर आकाश तो एक दम सूखा है रेगिस्तान की तरह!"

"हमारे खेतों-सा भी तो तुम कह सकते हो!"

"हाँ, सही कहा तुम ने! सफाचट ना आकाश अच्छा लगता है ना खेत!"

"लिछिया, अपनी ज़्यादा उम्र तो आकाश को निहारते हुए ही बीती है और...!"

"और लगभग अपने सूखे खेतों को भी !"

हड़मान की यह बात सुन लिछिया खिलखला पड़ा! दोनों अपने-अपने सूखे खेतों को देखते हुए बातें कर रहे थे!

"लिछिया क्या हम अपनी इस बची उम्र में अपने खेतों को लहलहाते हुए देख पाएंगे?!"

"तो क्या यह देखने के लिए तब तक ज़िंदा रहना चाहोगे?!"

"अच्छी चुटकी ली है तुमने, काश ऐसा होता कि उम्र अपने हिसाब से जी जाती!"

" हम्म्म, खरी बात! आसमान की तरह है, कुछ तय नहीं करता कि, कहाँ ज़्यादा बरसना है, कहाँ कम!"

तभी बहुत तेज़ी से एक मोटर साइकिल उनके पास से फर्रराटें से निकला धूल का गुबार उड़ाते हुए!

"नयी माटी का जोश देखा, कैसा निकला! "

"हाँ! अपनी काया की माटी भी कभी ऐसी थी, मगर इतनी तहज़ीब बिसराये नहीं थी!

"देखते-देखते कितना कुछ बदल गया बस अपनी आस ही नहीं बदली....!" अगले शब्द रूधे गले में रह गए और एक टक वापिस आसमान तकने लगा!

"क्या तुम्हारे यूँ दुखी होने से बादल बरस पड़ेंगे?!"

"नहीं! मगर मेरे दुखी मन से आँखें तो बरसेगी ना!"

साम्यवाद

"माँ कितना अच्छा होता कि यदि हम भी धनी होते तो हमारे भी यूँ ही नौकर-चाकर होते ऐशो-आराम होता।"

"सब किस्मत की बात है, चल फटाफट बर्तन साफ कर और भी काम अभी करना पड़ा है।"

माँ-बेटी बर्तन मांजते हुए बातें कर रही थीं।

"माँ। इस घर की सेठानी थुलथुली कितनी है और बहुओं को देखो हर समय बनी-ठनी घूमती रहती हैं, पतला रहने के लिए कसरतें करती हैं भला घर का काम-काज, रसोई का काम, बर्तन-भांडे आदि माँजें तो कसरत करने की ज़रूरत ही नहीं पड़े, है ना माँ ?"

“बात तो ठीक है.. बस हमें भूखों मरना पड़ेगा।"

***

उपहार

"वाह, मेरा बेटा तो एक दम अमीर लग रहा है ये कपड़े पहन कर, ख़ूब जच रहे हैं तुझ पे !"

"अरे अम्मा ! जचूंगा तो सही, आज मेरा जन्म दिन जो है !"

"मेरा राजा बेटा, तेरी इच्छा थी ना कि पिंटू बाबा जैसे कपड़े तू पहने ?"

"हां अम्मा, मैंने देखा था जब आप चुपके से ले रही थी !"

"देखा था ! तेरी ज़िद ऐसे कपड़ों की ही थी ना जन्मदिन पे ! मगर तुझे पता है अपनी हैसियत इतने महंगे कपड़े खरीदने की थोड़ी ना है तो मैंने ..!"

"तभी तो आप ने अपनी मालकिन से चुपक-से पिंटू बाबा के ये पुराने कपड़े मुझसे से नज़र चुरा मांग लिए थे, मगर अम्मा फिर भी मैंने देख लिया था !"

माँ अपने नन्हे बेटे को गले लगाती रुआंसी बोली –

"सही बात है बेटा, तेरी ऐसी इच्छा भला और कैसे पूरा कर पाती बता ! मगर तेरे बदन के लिए तो नए ही है ना !"

***

पहचान

“भले ही तुम मेरी पत्नी होकर मेरा साथ ना दो, मगर मैं ये मानने को कतई तैयार नहीं हूं कि

गजनी फिल्म के आमिर खान जैसा किरदार भी कोई हक़ीक़त में होता है जिसकी याददाश्त सिर्फ़ पन्द्रह मिनट के लिये रहती है .. मैं इस मैगज़ीन में छपे आर्टिकल की कटु आलोचना करता हूं .. डॉक्टर रिजर्व नेचर की मेरी पत्नी जाने कैसे तुमसे इतनी घुल-मिल गई जो इस आर्टिकल को लेकर तुम्हारा सपोर्ट कर रही है! डॉक्टर, मुझे हस्पताल से छुट्टी कब दे रहे हो, मेरी मेडिकल रिपोर्ट का क्या हुआ। हाँ..मेरी बीमारी तुम्हारे पकड़ में आयी है या नहीं या यूंही मुझ पर एक्सपेरीमेंट करे जा रहे हो, डॉक्टर लोग शायद मरीज को इन्सान नहीं जानवर समझकर अपने नित-नए प्रयोग करने की कोशिश करते हैं, हाँ... तो डॉक्टर.....।"

“क्या हुआ चुप क्यूँ हो गए, क्या कह रहे थे, तो डॉक्टर ....?" बौखलाई पत्नी उसके पास जाती हुई बोली।

“माफ कीजिए, मैंने आपको जरा....पहचाना नहीं "

पत्नी डबडबाई आँखें लिए अपनी शादी का फोटो फिर से पति को दिखाने लगी।

***

सौदा

"साहब ! मैंने ऐसा क्या कर दिया जो मुझे बर्खास्त कर दिया" चपरासी बोला !

"तुमने तो सिर्फ अपना कर्तव्य निभाया था, जिससे मुझे आघात पंहुचा"

" साहब ! मैं समझा नहीं ? "

" ना तुम बारिश में कई दिनों से भीग कर ख़राब हो रहे फर्नीचर को महफूज़ जगह रखते और ना ही नया फर्नीचर खरीद की जो स्वीकृति मिली थी, वो निरस्त होती. अधिकारी ने लाल आँखें लिए प्रत्युत्तर दिया.

***

मकान मालकिन (रोऑल्ड ढल)Roald Dahl

हिंदी अनुवाद : श्रीविलास सिंह

बिली वीवर लंदन से अपराह्न वाली धीमी गति की रेलगाड़ी से, रास्ते में स्विंडन में गाड़ी बदलता हुआ, यात्रा करके आया था। जिस समय वह बाथ पहुँचा रात्रि के नौ बजे के आसपास का समय हो रहा था और सितारों भरे साफ़ आकाश में चाँद स्टेशन के प्रवेशद्वार के सामने वाले मकान के ऊपर निकल रहा था। किंतु माहौल मारक रूप से ठंडा था और हवा उसके गालों पर बर्फ की कटार की भाँति पड़ रही थी।

“एक्सक्यूज़ मी,” उसने कहा, “ क्या कोई सस्ता होटल है जो यहाँ से बहुत दूर न हो?”

“बेल एंड ड्रैगन में कोशिश करो,” कुली ने सड़क के एक ओर संकेत करते हुए कहा।“वे तुम्हें ठहरा सकते हैं। वह यहाँ से एक चौथाई मील के क़रीब दूर सड़क के दूसरी ओर है।”बिली ने उसको धन्यवाद दिया और अपना सूटकेस उठा कर बेल एंड ड्रैगन के लिए चौथाई मील की दूरी तय करने चल पड़ा। वह पहले कभी बाथ नहीं आया था। वह किसी ऐसे को नहीं जानता था जो वहाँ रहता हो। लेकिन लंदन में मुख्यालय में मिस्टर ग्रीनस्लेड ने उसे कहा था कि यह एक शानदार शहर था। “अपने रहने की जगह ख़ुद तलाशो,” उन्होंने कहा था, “और फिर जब ठीक से व्यवस्थित हो जाओ तो शाखा प्रबंधक के पास जा कर रिपोर्ट करो।”

बिली सत्रह साल का था। वह नेवी ब्ल्यू रंग का नया ओवरकोट, नया ट्रिल्बी हैट और भूरे रंग का नया सूट पहने हुए था तथा बहुत अच्छा महसूस कर रहा था और सड़क पर फुर्ती से चल रहा था। आजकल वह हर काम फुर्तीले तरीक़े से कर रहा था। वह इस निर्णय पर पहुँचा था कि फ़ुर्तीलापन सभी सफल व्यवसायियों की सामान्य विशेषता है। मुख्यालय के बड़े लोग जादुई रूप से हर समय फुर्तीले रहते थे। वे लोग अद्भुत थे।

चौड़ी सड़क पर कोई दुकान नहीं थी और जब वह सड़क पर चल रहा था दोनों ओर बस ऊँची इमारतें थी, सारी की सारी एक जैसी। उन सभी में पोर्च और खंभे बने थे और चार या पाँच सीढ़ियाँ थी जो सामने के द्वार को जाती थी और यह बात आसानी से समझी जा सकती थी कि

किसी समय वे वैभवपूर्ण आवासीय इमारतें रही होंगी। लेकिन अभी, अंधेरे में भी, वह देख सकता था कि दरवाज़ों पर के लकड़ी के काम से पेंट की पपड़ियाँ छूट रही थी और उनके सुदर्शन, श्वेत अगले हिस्से बिना देखभाल के दरारों से टूट रहे थे।

अकस्मात्, सीढ़ियों के नीचे की एक खिड़की में, जो छः गज दूर स्थित लैंप पोस्ट से शानदार तरीक़े से प्रकाशित थी, बिली की निगाह एक छपे हुए नोटिस पर पड़ी जो ऊपर के एक पल्ले के शीशे पर चिपका हुआ था। उस पर लिखा था "बेड एंड ब्रेकफास्ट"। पीली गुलदाउदी का एक लम्बा और खूबसूरत गुलदान ठीक नोटिस के नीचे स्थित था। उसने चलना रोक दिया। वह थोड़ा और नज़दीक गया।

हरे पर्दे (किसी प्रकार का मख़मली कपड़ा) खिड़की के दोनों ओर लटके हुए थे। उनकी बग़ल में गुलदाउदी के फूल बहुत आश्चर्यजनक लग रहे थे। वह सीधे वहाँ गया और शीशे में से भीतर कमरे में झाँका और जो पहली चीज उसने देखी वह आतिशदान में जलती चमकदार आग थी। आग के सामने कालीन पर एक नन्हा प्यारा सा डॉक्सैंड (कुत्ता) अपने पेट में अपनी नाक छिपाए गुड़ामुड़ा सो रहा था।

ख़ुद कमरा, जहाँ तक वह नीमअंधेरे में देख सकता था, खूबसूरत फ़र्नीचर से भरा हुआ था। वहाँ एक बेबी ग्रैंड पियानो, एक बड़ा सोफा, और कई गद्देदार कुर्सियाँ रखी थी; और एक कोने में उसने देखा कि एक पिंजरे में एक बड़ा तोता था। इस तरह की जगह में, जीव-जंतु सामान्यतः अच्छा संकेत होते हैं। बिली ने स्वयं से कहा; और सब कुछ को देखते हुए, उसे लगा जैसे रहने के लिए यह एक काफ़ी अच्छी जगह होगी। निश्चित रूप से यह बेल एंड ड्रैगन से अधिक आरामदायक होगी। दूसरी ओर, एक पब एक बोर्डिंग हाउस से अधिक अनुकूल जगह होगी। शाम को वहाँ बीयर और डॉर्ट होगा, और बात करने के लिए ढेरों लोग,और संभवतः वह अपेक्षाकृत सस्ता भी होगा। वह दो रातें पहले भी एक पब में रह चुका था और वह उसे पसंद भी आया था। वह कभी किसी बोर्डिंग हाउस में नहीं ठहरा था, और यदि पूरी ईमानदारी से कहा जाए तो, वह उनसे थोड़ा डरता भी था। नाम से ख़ुद ही पानी वाली पत्तागोभी, लालची मकान मालकिनें, और लिविंग रूम में एक ताकतवर हाउसकीपर की गंध की छवि उभरती थी।

इस तरह दो तीन मिनट ठंड में कंपकपाने के पश्चात बिली ने निर्णय लिया कि वह यहाँ के बारे में मन बनाने से पूर्व आगे जाएगा और बेल एंड ड्रैगन पर एक नज़र डालेगा। वह जाने के लिए

मुड़ा। और अब उसके साथ एक विचित्र बात हुई। वह वापस लौटने और मुड कर खिड़की से दूर जाने ही वाला था कि उसकी निगाह एकाएक बहुत ख़ास तरीक़े से चिपके छोटे से नोटिस पर अटक गयी जो वहाँ लगा था। उस पर बेड एंड ब्रेकफास्ट लिखा था। बेड एंड ब्रेकफास्ट, बेड एंड ब्रेकफास्ट, बेड एंड ब्रेकफास्ट। हर शब्द शीशे में से उसकी ओर झाँकती बड़ी काली आँखों की भाँति उसे ताक रहा था, उसे पकड़े हुए, उसे मजबूर करता, जहाँ वह था वहीं रहने के लिए मजबूर करता और मकान से दूर जाने से रोकता, और अगली बात जो उसने जानी वह ये थी कि वह वास्तव में खिड़की से हट कर मकान के मुख्य द्वार की ओर जाने को सीढ़ियाँ चढ़ रहा था जो कालबेल तक पहुँचती थी।

उसने घंटी का स्विच दबाया। दूर पीछे के किसी कमरे में उसने घंटी बजने की आवाज़ सुनी और फिर तुरंत — यह निश्चय ही तुरंत ही हुआ होगा क्योंकि वह घंटी के बटन से अपनी उँगली भी नहीं हटा पाया था — दरवाज़ा तेजी से खुल गया और एक महिला वहाँ खड़ी थी।

सामान्यतः आप घंटी बजाते हैं और कम से कम आधा मिनट प्रतीक्षा करते हैं इसके पूर्व कि दरवाज़ा खुले। लेकिन यह तो कुछ अनपेक्षित सा था। उसने घंटी बजाई —और वह बाहर आ गई! इससे वह उछल गया।

वह लगभग पैंतालीस या पचास वर्ष की थी, और जिस समय उसने उसे देखा, महिला उसे देख कर स्वागत में गर्मजोशी से मुस्करायी।

“कृपया भीतर आइए,” उसने बहुत अच्छे से कहा। वह दरवाज़े को पूरा खोलती हुई, एक ओर हट गई और बिली ने स्वयं को स्वचालित तरीक़े से मकान में आगे बढ़ते हुए पाया। बाध्यता अथवा, अधिक सही कहें तो, उसका अनुगमन करते हुए घर में जाने की इच्छा असाधारण रूप से मज़बूत थी।

“मैंने खिड़की में लगा नोटिस देखा था,” उसने स्वयं को रोकते हुए कहा।

“हाँ, मैं जानती हूँ।”

“मैं एक कमरे की तलाश में घूम रहा था।”

“यह पूरी तरह तुम्हारे लिए तैयार है,” उसने कहा। उसका चेहरा गोल और गुलाबी था और उसकी आँखें नीली और बहुत विनम्र थी।

“मैं बेल एंड ड्रैगन के लिए जा रहा था,” बिली ने उससे कहा। “लेकिन आपकी खिड़की पर लगे नोटिस ने मेरा ध्यान आकृष्ट कर लिया।

"मेरे प्यारे बच्चे," उसने कहा, "तुम ठंड में से भीतर क्यों नहीं आ जाते?"

"आप कितना चार्ज करती हैं ?"

"पाँच और छः पेन्स एक रात के, ब्रेकफास्ट सहित।"

यह तो बहुत ही सस्ता था। यह तो उसके आधे से भी कम था जो भुगतान करने को वह इच्छुक था।

"यदि यह अधिक है तो," उसने जोड़ा, " तो मैं थोड़ा कम भी कर सकती हूँ। क्या तुम्हें ब्रेकफास्ट में अंडा चाहिए? इस समय अंडे महँगे हैं। बिना अंडे के छः पेन्स कम हो जाएँगे।"

"पाँच और छः पेन्स ठीक है। उसने कहा। मुझे यहाँ रहना अच्छा लगना चाहिए।"

"मैं जानती हूँ तुम्हें अच्छा लगेगा। भीतर आ जाओ।"

वह बहुत ही अच्छी लग रही थी। वह बिलकुल किसी अच्छे स्कूली दोस्त की माँ जैसी, क्रिसमस की छुट्टियों के दौरान अपने घर में रहने हेतु स्वागत करती सी लग रही थी। बिली ने अपना हैट उतार दिया और दरवाज़े के भीतर कदम रखा। "उसे वहाँ टांग दो," उसने कहा, "और मुझे अपना कोट उतारने में मदद करने दो।"

हाल में कोई और हैट अथवा कोट नहीं थे। वहाँ कोई छाता अथवा टहलने की छड़ी भी नहीं थी।

"यहाँ सब कुछ केवल हमारे लिए है," उसने, जब वह उसे सीढ़ियों से ऊपर ले जा रही थी, उसके कंधों के ऊपर की ओर देखते मुस्कुराते हुए कहा।

"देखो, ऐसा अक्सर नहीं होता जब हम अपने नन्हें घोंसले में किसी आगंतुक के आने का आनंद उठा पाते हैं।"

बूढ़ी लड़की थोड़ी दीवानी है, बिली ने ख़ुद से कहा। लेकिन पाँच और छः पेन्स एक रात के किराए पर इस बात की परवाह कौन करता है? – मैं सोच रहा था कि आपके पास प्रार्थियों की भीड़ लगी होगी," उसने विनम्रता से कहा।

"हाँ, ऐसा है, माय डियर, निश्चित रूप से ऐसा है। लेकिन समस्या यह है कि मैं थोड़ी सी इस मामले में चूजी और विशिष्ट हूँ – तुम देख सकते हो मेरा क्या मतलब है।"

"ओह, हाँ।"

"लेकिन मैं सदैव तैयार रहती हूँ। हर चीज सदैव दिन रात तैयार रहती है शायद कब बे मौक़े कोई स्वीकार्य युवा और भद्र पुरुष आ जाये। और यह आनंददायक होता है, बहुत अधिक आनंददायक होता है जब मैं यदाकदा दरवाज़ा खोलती हूँ और

मैं वहाँ किसी को खड़ा हुआ पाती हूँ जो कि एकदम ठीक हो।" वह सीढ़ियों के मध्य में थी, जब वह सीढ़ियों की रेलिंग पकड़ कर एक क्षण को रुक गई, और अपना सिर घुमा कर बदरंग होठों से उसकी ओर देख कर मुस्करायी। "तुम्हारे जैसा," उसने जोड़ा और उसकी नीली आँखें बिली की समूची देह पर नीचे की ओर दौड़ गयीं और पुनः ऊपर की ओर।

पहली मंज़िल पर पहुँच कर उसने उससे कहा, "यह मंज़िल मेरी है।"

वे दूसरी मंज़िल के लिए सीढ़ियाँ चढ़ गए। "और यह तुम्हारी है," उसने कहा। "तुम्हारा कमरा ये है। मैं आशा करती हूँ तुम इसे पसंद करोगे।" वह उसे सामने के एक छोटे किंतु आकर्षक

शयनकक्ष में ले गई और लाइट जलाते हुए भीतर चली गई।

"सुबह का सूरज सीधे खिड़की से दिखता है, मिस्टर पर्किन्स। आप मिस्टर पर्किन्स हैं, क्या नहीं?"

"नहीं," उसने कहा, " मैं मिस्टर वीवर हूँ।"

"मिस्टर वीवर। बहुत बढ़िया। मैंने चादरों के बीच में एक पानी की बोतल रख दी है, उन्हें गर्म रखने के लिए, मिस्टर वीवर। एक अजनबी बिस्तर में साफ़ सुथरी चादर के साथ एक गर्म पानी की बोतल का होना बहुत आरामदायक होता है, क्या आप सहमत नहीं हैं? और आप किसी भी समय यदि ठंडक महसूस करें तो गैस जला सकते हैं।"

"धन्यवाद," बिली ने कहा। "बहुत बहुत धन्यवाद।" उसने नोटिस किया कि बिस्तर को ढकने वाली चादर हटा दी गई है और ओढ़ने की चादर और कंबल क़रीने से एक ओर मोड़ दिए गए हैं, किसी के सोने के लिए सब कुछ तैयार है।

"मैं बहुत खुश हूँ कि तुम आए," उसने बिली के चेहरे को बहुत ध्यान से देखते हुए कहा, "मैं चिंतित होने लगी थी।"

"सब ठीक है," बिली ने प्रसन्नता से कहा। "आपको मेरे लिए चिंतित नहीं होना चाहिए।"

उसने अपना सूटकेस कुर्सी पर रख दिया और उसे खोलने लगा।

"और रात्रि के भोजन का क्या है, माय डियर? क्या तुमने यहाँ आने से पहले कुछ खा लिया था?"

"मैं बिलकुल भूखा नहीं हूँ, धन्यवाद," उसने कहा। "मैं सोचता हूँ अब मैं सोऊँगा जितना शीघ्र सम्भव हो उतनी जल्दी क्योंकि कल सुबह मुझे

अपेक्षाकृत जल्दी उठना है और कार्यालय में रिपोर्ट करना है।"

"फिर ठीक है। अब मैं जाऊँगी ताकि तुम अपना सामान निकाल सको। लेकिन सोने से पूर्व क्या तुम भूतल पर बैठक में आ कर रजिस्टर में हस्ताक्षर करने की कृपा करोगे। हर एक को यह करना होता है क्योंकि यह देश का क़ानून है और हम इस स्थिति में कोई क़ानून नहीं तोड़ना चाहते, क्यों?" उसने उसकी ओर हल्के से हाथ हिलाया और उसके कमरे से तेज़ी से बाहर निकलते हुए दरवाज़ा बंद कर दिया।

अब, इस तथ्य से कि उसकी मकान मालकिन थोड़ी सी खिसकी हुई लग रही थी, बिली को जरा भी चिंता नहीं थी। सब के बाद, न केवल वह हानिरहित थी – इस सम्बंध में कोई संदेह नहीं था – बल्कि वह काफ़ी दयालु और उदार आत्मा भी थी। उसने अनुमान लगाया की शायद उसने युद्ध में अपना पुत्र खो दिया है, अथवा और कुछ ऐसा ही, और उससे कभी भी मुक्त नहीं हो पायी है।

इसलिए कुछ मिनट्ट के पश्चात, अपना सामान खोल लेने और अपने हाथ धो लेने के बाद, वह सीढ़ियाँ उतर कर भूतल पर आया और बैठक में प्रविष्ट हुआ। उसकी मकान मालकिन वहाँ नहीं थी किंतु आतिशदान में आग जल रही थी और नन्हा कुत्ता अब भी उसके आगे सो रहा था। कमरा आश्चर्यजनक रूप से गर्म और आरामदायक था। मैं भाग्यशाली हूँ, उसने अपने हाथ आपस में रगड़ते हुए सोचा। एक तरह से यह सब एकदम ठीक है।

उसने अतिथि पंजिका को पियानो पर खुला पड़े पाया, इसलिए अपनी कलम निकाली और अपना नाम और पता लिख दिया। उसके ऊपर पन्ने पर मात्र दो और प्रविष्टियाँ थी, और जैसा कि कोई अतिथि पंजिका देख कर हमेशा करता है, वह उन्हें पढ़ने लगा। एक था क्रिस्टोफ़र मल्फोर्ड कार्डिफ़ से। और दूसरा ब्रिस्टल से ग्रिगोरी डब्ल्यू. टेम्पल। यह बड़ा मज़ेदार है, उसने एकाएक सोचा। क्रिस्टोफ़र मल्फ़ोर्ड। यह कुछ सुना सा नाम लगा। अब किस जगह उसने यह अपेक्षाकृत असामान्य सा नाम सुना था?

क्या वह स्कूल में कोई लड़का था? क्या वह उसकी बहन के अनेकों बॉयफ्रेंड्स अथवा पिता के मित्रों में से कोई था? नहीं, नहीं, यह उन में से कोई नहीं था। उसने पुनः पंजिका पर नज़र डाली। क्रिस्टोफ़र मल्फ़ोर्ड, 231, कैथीड्रल रोड, कार्डिफ़। ग्रेगोरी डब्ल्यू. टेम्पल, 27 सायकामोर ड्राइव, ब्रिस्टल। वास्तव में अब उसने फिर इस बारे में सोचा कि वह निश्चित नहीं कह सकता था

कि दूसरा नाम भी उतना ही परिचित सा नहीं लग रहा जितना कि पहला।

“ग्रेगोरी टेम्पल? उसने अपनी स्मृति में खोजते हुए ज़ोर से कहा। क्रिस्टोफ़र मल्फ़ोर्ड ?....

“बहुत प्यारे लड़के थे,” उसके पीछे से एक आवाज ने जवाब दिया, वह मुड़ गया और उसने अपनी मकान मालकिन को अपने हाथों में एक बड़ी सी चाँदी की चाय की ट्रे लिए देखा। वह उसे बिलकुल उसके सामने लिए हुए थी, अपेक्षाकृत ऊपर उठाए हुए, जैसे कि वह ट्रे किसी खिलन्दड़े घोड़े की लगाम हो।

“वे कुछ कुछ परिचित से लग रहे हैं,” उस ने कहा।

“अच्छा? कितनी दिलचस्प बात है।”

“मुझे लगभग पक्का लगता है कि मैंने ये नाम कहीं पहले सुने हैं। क्या यह विचित्र नहीं है? हो सकता है यह समाचार पत्र में रहा हो। वे किसी तरह प्रसिद्ध नहीं थे, क्या थे? मेरा मतलब है प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी या फुटबॉल खिलाड़ी अथवा इसी तरह के कुछ?”

“प्रसिद्ध,” उसने सोफ़े के सामने की नीची टेबुल पर ट्रे रखते हुए कहा, “नहीं, मैं नहीं समझती कि वे प्रसिद्ध थे। लेकिन वे असाधारण रूप से सुदर्शन थे, दोनों ही, मैं दावे के साथ कह सकती हूँ। वे दोनों लंबे और युवा थे और सुदर्शन भी, माय डियर, बिलकुल तुम्हारे जैसे।”

एक बार पुनः, बिली ने पंजिका में देखा।

“इधर देखो,” उसने तारीख़ पर ध्यान देते हुए कहा। “यह आख़िरी प्रविष्टि लगभग दो साल से पहले की है।”

“अच्छा?”

“हाँ, निश्चय ही। और क्रिस्टोफ़र मुलहॉलैण्ड की उससे एक साल पहले की – तीन साल से अधिक पहले की।”

“ओह,” उसने अपना सिर हिलाते और सुंदर सी आह भरते हुए कहा।”मैंने इस बारे में सोचा भी नहीं। समय कैसे हम सब से दूर उड़ जाता है, है न मिस्टर विल्किन्स?”

“मैं मिस्टर वीवर हूँ,” बिली ने कहा, “वी-वर।”

“ओह, निश्चय ही !” वह सोफ़े पर बैठते हुए चिल्लाई। “मैं कितनी बेवकूफ़ हूँ। मैं माफ़ी चाहती हूँ। मैं एक कान से सुन कर दूसरे से निकाल देती हूँ, मिस्टर वीवर।”

“आप कुछ जानती हैं?” बिली ने कहा। “कुछ जो इस सब के बारे में असाधारण है?”

“नहीं, प्रिय, मैं नहीं जानती।”

"अच्छा, आप देखिए – ये दोनों ही नाम, मुलहॉलैण्ड और टेम्पल, मुझे ये दोनों अलग अलग न केवल याद आते से लग रहे हैं, यदि कहूँ तो, बल्कि किसी न किसी प्रकार, किसी विशेष तरीक़े से, वे आपस में संबंधित भी हैं। मानों वे किसी एक जैसी बात के लिए प्रसिद्ध हों, मेरा मतलब है – जैसे कि... जैसे डेम्प्सी और टूनी, उदाहरण के लिए, अथवा चर्चिल और रूज़वेल्ट।"

"कितना आश्चर्यजनक," उसने कहा। "लेकिन अभी यहाँ सोफ़े पर माय डियर, मेरे पास सोफ़े पर बैठो और मैं तुम्हें चाय का बढ़िया सा प्याला और अदरख वाले बिस्कुट दूँगी, तुम्हारे सोने जाने से पहले।"

"आपको वास्तव में परेशान नहीं होना चाहिए," बिली ने कहा। "मेरा ये मतलब नहीं था कि आप ऐसा कुछ करें।" वह पियानो के पास उसे देखता हुआ खड़ा था जब वह कप प्लेटों से उलझी हुई थी। उसने नोटिस किया कि उसके हाथ छोटे, सफ़ेद और तेज़ी से चलते हुए थे और उँगलियों के नाखून लाल।

"मुझे पक्का लग रहा है कि उनका नाम मैंने अख़बार में देखा था," बिली ने कहा। मैं इस बारे में एक सेकेंड में सोच लूँगा। निश्चय ही मैं कर लूँगा।"

ऐसी चीज से अधिक और कुछ कष्टकारी नहीं होता जो किसी की स्मृति की सीमा रेखा के ठीक बाहर रुकी रह जाती है। उसे हार मान लेने से घृणा थी।

"अब, एक मिनट प्रतीक्षा करो," उसने कहा। "बस एक मिनट रुको। मुलहॉलैंड... क्रिस्टोफ़र मुलहॉलैण्ड... क्या यह एटोन के उस छात्र का नाम नहीं जो पश्चिमी ग्रामीण इलाक़े की पैदल यात्रा पर था और फिर अकस्मात्...."

"दूध?" उसने पूछा। "और शक्कर?"

"हाँ, प्लीज़। और फिर अकस्मात्..."

"एटोन का छात्र?" उसने कहा। "ओह, नहीं माय डियर, यह संभवतः ठीक नहीं हो सकता क्योंकि मेरे मिस्टर मुलहॉलैण्ड जब मेरे यहाँ आए थे, निश्चित रूप से एटोन के छात्र नहीं थे। वे कैम्ब्रिज के अवर स्नातक थे। अब यहाँ आओ और यहाँ मेरे पास बैठो और इस प्यारी आग के सामने अपने को गर्माहट दो। आओ। तुम्हारी चाय तैयार है।" उसने अपनी बग़ल में सोफ़े की ख़ाली जगह को थपथपाया और बिली को देख मुस्कराती हुई बैठी उसके आने की प्रतीक्षा करती रही। उसने धीरे से कमरे को पार किया, और सोफ़े के किनारे पर बैठ गया। महिला ने उसके लिए चाय का प्याला उसके सामने टेबुल पर रख दिया।

"तो हम यहाँ है," उसने कहा। कितना बढ़िया और आरामदायक है, क्या नहीं?"

बिली ने अपनी चाय पीनी शुरू कर दी। उसने भी वही किया। आधे मिनट के लिए दोनों में से कोई कुछ नहीं बोला। लेकिन बिली जानता था कि वह उसे ही देख रही थी। उसकी देह आधी बिली की ओर मुड़ी हुई थी, और वह अपने चेहरे पर उसकी आँखें महसूस कर सकता था, अपने प्याले के किनारे से उसे देखती हुई। बीच बीच में उसे एक विशेष प्रकार की महक का अनुभव हुआ जो उसकी देह से आती हुई सी महसूस होती थी। यह जरा भी अरुचिकर नहीं थी और यह उसे कुछ याद दिला रही थी – वह निश्चित नहीं था कि वह उसे क्या याद दिला रही थी। अखरोट का अचार ? नया चमड़ा ? अथवा वह किसी अस्पताल का गलियारा था?

"मिस्टर मुलहॉलैंड को यह चाय बहुत पसंद थी," उसने विस्तार से बताया। "मैंने किसी को अपने

जीवन में इतनी चाय पीते नहीं देखा जितनी प्यारे मिस्टर मुलहॉलैंड पीते थे।"

"मुझे लगता है वे अभी हाल में ही छोड़ कर गए हैं," बिली ने कहा। वह अभी भी उन दो नामों के बारे में सोच रहा था। उसे अब पक्का विश्वास हो गया था कि उसने उन्हें अख़बार में देखा था – हेडलाइन्स में।

"छोड़ गया," उसने अपनी भौंहें टेढ़ी करते हुए कहा। "लेकिन मेरे प्यारे बच्चे, वह कभी छोड़ कर नहीं गया। वह अब भी यहीं है। मिस्टर टेम्पल भी यहीं हैं। वे तीसरी मंज़िल पर हैं, दोनों साथ साथ हैं।"

बिली ने धीरे से अपना प्याला टेबुल पर रखा, और मकान मालकिन की ओर देखा। वह उसकी ओर देख कर मुस्करायी और फिर उसने अपना एक सफ़ेद हाथ उसके घुटने पर रख कर सांत्वना में थपथपाया।"तुम्हारी क्या उम्र है, माय डियर?" उसने पूछा।

"सत्रह।"

"सत्रह !" वह चिल्लाई। "ओह, यह एकदम सही उम्र है ! मिस्टर मुलहॉलैंड भी सत्रह के थे। लेकिन मेरे विचार से वे तुम से थोड़ा सा कम लंबे थे, वास्तव में निश्चित रूप से वे कम लंबे थे, और उनके दाँत भी इतने सफ़ेद नहीं थे। तुम्हारे दाँत सबसे खूबसूरत हैं, मिस्टर वीवर, क्या तुम्हें पता है?"

"वे उतने अच्छे नहीं हैं, जितने दिखते हैं," बिली ने कहा। "उनमें पीछे की ओर फिलिंग कराई गई है।"

"निश्चय ही, मिस्टर टेम्पल थोड़े अधिक उम्र के थे," उसने बिली की बात को नज़रअंदाज़ करते

हुए कहा। "वे वास्तव में अट्ठाइस के थे। फिर भी मैं कभी अंदाज़ न लगा पाती यदि उन्होंने मुझे न बताया होता, जीवन भर भी नहीं। उनकी देह पर इसका एक भी चिह्न नहीं था।"

"क्या नहीं था?" बिली ने कहा।

"उनकी त्वचा किसी बच्चे की त्वचा जैसी थी।"

एक क्षण को सन्नाटा रहा। बिली ने अपना प्याला उठाया और चाय का एक और घूँट लिया, फिर उसने उसे पुनः धीरे से प्लेट में रख दिया। उसने उसके कुछ कहने की प्रतीक्षा की किंतु लग रहा था वह पुनः अपने मौन में चली गयी थी। वह उसकी ओर सीधे देखता बैठा रहा, उसके ठीक सामने, कमरे के दूर वाले कोने में, अपना नीचे का होंठ चबाता हुआ।

"वह तोता," बिली ने अंततः कहा। "आपको कुछ पता है? जब मैंने गली में से खिड़की से पहली बार इसे देखा था तो इसने मुझे पूरी तरह बेवक़ूफ़ बना दिया था। मैं क़सम खा सकता था कि यह ज़िंदा था।"

"अफ़सोस, अब नहीं है।"

"ऐसा बहुत भयंकर चतुरता के साथ किया गया है," बिली ने कहा। " यह जरा सा भी मरा हुआ नहीं लगता। ऐसा किसने किया?"

"मैंने किया है।"

"आपने किया है?"

"निश्चित रूप से," उसने कहा। "और तुम मेरे नन्हे बॉसिल से मिले?" उसने आग के सामने गुडीमुड़ी बैठे डॉक्सेंड कुत्ते की ओर इशारा किया। बिली ने उसकी ओर देखा। और अकस्मात् उसे भान हुआ कि यह जानवर भी उसी भाँति चुप और गतिहीन रहा है जैसे कि तोता। उसने हाथ बढ़ा कर उसकी पीठ को धीरे से छुआ। पीठ कठोर और ठंडी थी, और जब उसने अपनी उँगली से बालों को एक ओर हटाया, वह उसके नीचे की त्वचा देख सकता था, भूरापन लिए काली, सूखी और पूरी तरह संरक्षित।

"बहुत शानदार," उसने कहा। "एकदम से कितना चमत्कारी।" वह दूसरी ओर मुड़ गया और सोफ़े पर बैठी महिला को गहरी प्रशंसा की दृष्टि से देखने लगा। "इस तरह की कोई चीज़ज़ करना निश्चय ही सबसे कठिन रहा होगा।"

"बिलकुल भी नहीं," महिला ने कहा। "मैं अपने सभी पालतुओं को, जब वे मर जाते है,अपने हाथ से स्टफ़ (भर) करती हूँ। क्या तुम एक और प्याला चाय या कॉफ़ी लोगे ?"

"जी नहीं, धन्यवाद," बिली ने कहा। चाय का स्वाद हल्का सा **'कड़वे बादामों'** जैसा था लेकिन उसने इसकी ख़ास परवाह नहीं की।

“क्या तुमने पंजिका में हस्ताक्षर कर दिये, अथवा नहीं?”

“जी, कर दिया।”

“फिर ठीक है। क्योंकि यदि बाद में ऐसा होता है कि मैं भूल जाऊँ कि तुम्हें क्या कहते थे, मैं यहाँ नीचे आ कर देख सकूँ। मैं मिस्टर मुलहॉलैंड के सम्बंध में अब भी लगभग हर दिन ऐसा करती हूँ और मिस्टर...मिस्टर...”

“टेम्पल,” बिली ने कहा। “ग्रिगोरी टेम्पल। मुझे यह पूछने हेतु क्षमा करे, लेकिन क्या उन दोनों के अतिरिक्त पिछले दो या तीन वर्षों में और कोई अतिथि नहीं आए?”

अपना चाय का प्याला एक हाथ में ऊँचा उठाए हुए, अपना सिर थोड़ा सा बायीं ओर झुका कर,महिला ने उसकी ओर अपनी आँखों के कोने से देखा और पुनः कोमलता से मुस्कुरायी।

“नहीं, माय डियर,” उसने कहा। “ केवल तुम आए हो।”

*****

संकेत : (सायनाइड का स्वाद कड़वे बादामों जैसा होता है।)

चेतना को झकझोरते "भीड़ और भेड़िए" के व्यंग्य

आर पी तोमर

कैनेडा में वर्षों से रह रहे भारतवंशी व्यंग्यकार धर्मपाल महेंद्र जैन अब वह नाम हो गया है, जिनकी पहचान भारत के सुप्रसिद्ध व्यंग्यकारों में होती है। उनकी व्यंग्य रचनाओं को आँख बंद करके भी खरीदा जा सकता है। वे लंबे समय से व्यंग्य रचनाएं रच रहे हैं। "भीड़ और भेड़िए" नामक रचना को भी उन्होंने बेहतरीन व लीक से हटकर लिखा है। धर्मपाल जी को उनके पहले व्यंग्य संग्रह "सर क्यों दांत फाड़ रहा है" की भूमिका लिखने वाले सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई जी ने कहा था कि जरूरी नहीं कि व्यंग्य पढ़कर हंसी आये। बस, उसे अपने पाठक की चेतना को झकझोरने में सक्षम होना चाहिए। व्यंग्य वह जो तुमको खुद से मिलाए, विद्रूप और व्यवस्था की गंदगी उघाड़ दे और पढ़कर पाठक को लगे कि बदलाव होना चाहिए। धर्मपाल जी ने इन्हीं की गांठ बांधकर व्यंग्य लिखने, समझने और परखने की कुंजी बना ली है। अन्य रचनाओं की तरह उनकी इस किताब में भी समकालीन व्यंग्य के उत्सवी परिदृश्यों में आज के जमाने के फ़ास्ट फ़ूड परोसने से परहेज किया गया है। सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी ने भूमिका लिखते हुए कहा है कि धर्मपाल की रचना में

एकदम स्पष्ट है कि वह क्या कह रहे हैं, कहां खड़े हैं और पाठकों को किस दिशा में ले जाना चाहते हैं। वे लक्षणा, व्यंजना और अभिधा की बजाय व्यंग्य में गुप्त ऊष्मा को पिरोते हुए व्यंग्य को व्यंग बनाते हैं। यह ऊष्मा विचार, संवाद और शब्द को नया अर्थ देने की ताकत दे पाए ऐसा उनका लक्ष्य होता है। वे व्यंग्य की उस समझदार चुप्पी के खिलाफ हैं, जो समकाल में सत्ता के खेल के विरुद्ध कुछ भी बोलने से बचती है।

धर्मपाल महेंद्र जैन के व्यंग्य शोषित व वंचितों की आवाज बनते लगते हैं। वे अपनी मध्यम आवाज से नक्कारखाने के मालिकों को चेताने में कामयाब होते हैं। वे "भीड़ और भेड़िए" में वास्तव में अपनी व्यंग्य रचनाओं से चेतना को झकझोरते व आत्म साक्षात्कार कराते साफ नजर आते हैं, जो व्यंग्य की पहली मांग है। उनकी व्यंग्य रचना बहुत गहरी और दीर्घकालिक है। वे मानते हैं कि उनका व्यंग्य शाब्दिक और भाषिक अभिव्यक्ति के परे भी भावभंगिमाओं, शारीरिक मुद्राओं, रेखीय और रूपंकर, मूर्त और अमूर्त कई माध्यमों से उभरता है। प्रवासी भारतीय धर्मपाल जी की व्यंग्य रचनाओं में व्यंग्य चेतना का वह भाव स्पष्ट पढ़ने को मिलता है, जिसमें शब्दों और वाक्य की सामूहिक शक्ति होती है। व्यंग्यकार धर्मपाल जी खुद कहते हैं कि मेरे लिए व्यंग्य ऐसा प्रहार है जो चेतना को गालियों या कटु वचनों से उपजी तिलमिलाहट नहीं देता,वरन ऐसे झकझोरता है कि पाठक या श्रोता आत्म साक्षात्कार करें। उनकी व्यंग्य रचनाओं में प्रहारक शक्ति है। वे व्यवस्था की सड़ांध को इंगित करते हैं। पाखंड को उजागर करते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक "भीड़ और भेड़िए" में धारदार कलम चला कर शोषितों की बेचैनी को धार दी है। विचार, तर्क, कौशल से ऐसी पुस्तक को गढ़ा है, जो वास्तव में व्यवस्था पर चोट है, पाखंड को उजागर करती है और वक्त का तकाजा है। वे अन्योक्ति के साथ सार्थक कटाक्ष करने से नहीं चूकते। विषमताओं, विसंगतियों, सामाजिक कुरीतियों पर वह अपने कवि एवं सफल व्यंगकार-हृदय से प्रभावी व धारदार प्रहार करते दिखाई देते हैं। व्यंग्य, कटाक्ष और तीखे शाब्दिक प्रहार द्वारा विषमता के विरुद्ध 'एक अस्त्र' वाली शैली से लक्षित विषमताओं के नासूर की शल्य क्रिया करता है फिर भी दुख-दर्द का आभास तक नहीं होता। अलबत्ता हंसी के फव्वारे भी छूटते हैं। धर्मपाल जी बेधड़क होकर झूठ, पाखंड, लोभ, लाभवृत्ति की जड़ों पर चोट करते हुए आईना दिखाते हैं।

बात संकलन की रचनाओं पर करें तो रचनाकार ने "भीड़ और भेड़िए" नामक रचना में अवसरवादियों पर प्रहार करते हुए राजनीति को

निशाना बनाया है। उनका कहना है कि "भेड़ आदमी नहीं बन सकती। इसका मतलब यह नहीं है कि आदमी भेड़ नहीं बन सकता। आदमी भेड़ क्या भेड़िया भी बन सकता है और चमचमाता बिस्किट दिखा दो तो मेमना भी बन सकता है। कोई आदमी भेड़िया बन जाए तो वह अपनी जमात में सुपरलेटिव हो जाता है। वह कृपानिधान बनकर अपने आगे-पीछे घूम रहे लोगों को भेड़ बन सकता है।" वे आगे कहते हैं "भेड़ बनाने के मामले में राजनेता बेचारे ज्यादा ही बदनाम हैं। वे केवल राजनीतिक रुझान वाले समर्पित लोगों को कुत्ता बनाने की कवायत कर रहे होते हैं। ऐसे में आम आदमी कुत्तों के ठाठ देखता है और लिप्सा से टपकती कुत्तों की लार को भी कुत्ते अवसर में बदल लेते हैं। डराने, धमकाने, कुछ करने और आका के रोब तले दबा देने का दर्द जनता के मन में बसा देते हैं। देखते-देखते लोग भीड़ बन जाते हैं। राजनीति के अलावा भी भीड़ तो बनती है।" भेड़ के बहाने भीड़ के चरित्र पर चलते व्यंग्य का पटाक्षेप इस तरह होता है- "भीड़ देखकर पुलिस का मनोबल जागृत हो जाता है। शासकों के गड़रिए भीड़ हांक रहे हों तो पुलिस को नसबंदी चरित्र में रहना होता है। जब वे विरोधी गड़रियों को टोला ले जाते हुए देखते हैं तो उनका दिमाग सक्रिय हो जाता है। उन्हें दंड विधान की सारी धाराएं एकाएक याद आ जाती हैं। उनके डंडे में संविधान की आत्मा प्रवेश कर जाती है और उनके असले में दमदार गोलियां। वे हवाई फायर का इशारा कर देते हैं। तब समझदार भेड़ें भीड़ के भीतर से भीतर घुसती चली जाती हैं। वे अपने से कमजोर भेड़ों को कवच बनाकर छुप जाती हैं। कमजोरों व अपेशेवरों की की टांगे टूटती हैं, उनके सिर फटते हैं। पुलिस संरक्षण में एंबुलेंस उन्हें लादती है।" रचनाकार कटाक्ष करते हुए अंतिम पंक्ति में कहते हैं कि मैंने आवारा और दलबदलू कुत्ते देखे, पर कभी आवारा या दलबदलू भेड़ें सड़क या विधानसभा के आसपास नहीं देखीं।

प्रजातंत्र की स्थिति पर एक शानदार व्यंग्य इस तरह आता है- "प्रजातंत्र की बस तैयार खड़ी है। सरकारी गाड़ी है इसलिए 'धक्का परेड' है। धक्का लगाने में लोग जोर-शोर से जुटे हैं। एक बार गाड़ी रोल हो जाए तो ड्राइवर फर्स्ट गियर में उठाकर स्टार्ट कर ले। पर बस है कि टस से मस नहीं हो रही।" प्रजातंत्र का पूरा राजनीतिक विज्ञान इस व्यंग्य की जद में है, जिसका निष्कर्ष है- "धकियारे बड़े चालाक हैं। वह प्रजातंत्र का अर्थ समझ गए हैं और दोनों हाथों से बटोर रहे हैं। दोनों हाथ व्यस्त हैं तो धक्का कैसे लगाएँ? बस जहां की तहां खड़ी है। 135 करोड़ लोग बैठ गए हैं। पर बस नहीं चल रही। लोग दो अरब हो जाएंगे, वे भी इसमें ठँस जाएंगे। ड्राइवर का मन

बहुत करता है कि वह धकियारों को साफ-साफ कह दे कि सब एक दिशा में धक्का लगाओ। धकियारे उसकी नहीं सुनते, वे कहते हैं तुम्हारा काम आगे देखना है, तुम आगे देखो पीछे हम अपना-अपना देख लेंगे। प्रजातंत्र की बस यथावत खड़ी है।"

'दो टांग वाली कुर्सी' की रचना में रचनाकार ने कुर्सी का महत्व बताते हुए अभिनव स्थापनाएँ की हैं। जैसे- ऊंचा उठना हो तो कुर्सी साथ लेकर सीढ़ी से चढ़ना चाहिए और मंजिल पर पहुंच कर अपनी कुर्सी टिकानी चाहिए। जिस कुर्सी पर आपको बैठना हो उसके लिए यदि कोई उत्सुक दिखे तो अपना दावा ठोक दें। प्रतिद्वंदी को आप खुद नहीं ठोकें। अपने चार लोगों को इशारा कर दें। वे उसकी ठुकाई करेंगे और आपका जोर-शोर से समर्थन भी। हर कुर्सी में सिंहासन बनने की निपुणता नहीं होती। कुछ लोग जो अपनी कुर्सी को नरमुंडों और मनुष्य रक्त की जैविक खाद देकर पोषित कर पाते हैं, वे अपनी कुर्सी को सिंहासन बना पाते हैं। कुर्सी की प्रतिष्ठा बनाए रखना कुर्सी संयोजकों के हाथ में हैं। जिन संयोजक को कुर्सी जमाने की तमीज नहीं हो उनके कार्यक्रमों में कुर्सी तोड़ने नहीं जाएं। कुर्सी का मान रखना हो तो कुर्सियों की आभासी कमी बनाए रखना जरूरी है।

"भैंस की पूंछ" रचना में बड़ी ही चतुराई से चुटीली काटी गई है। रचनाकार धर्मपाल महेंद्र जैन लिखते हैं कि सुरीली जी ने चंदन का थाल मंत्रीवर के चरणों में रख दिया और प्रार्थना की कि हे नाथ, आपके चरण इस थाल में रखकर घिसे हुए चंदन को उपकृत करें। मंत्रीवर ने गदगद हो वैसा ही किया। अब मंत्रीवर के तलवों में चंदन ही चंदन लगा था। तब रसीला जी और सुरीली जी ने मंत्रीवर की जय-जयकार करते हुए कहा नाथ आपके पुण्य चरण हमारे भाल पर रख दें। मंत्रीवर संस्कृति रक्षक थे, नरमुंडों पर नंगे पैर चलने में प्रशिक्षित थे, उन्होंने सुरीली जी व रसीला जी के भाल पर अपने चरण टिका दिए। कलाकार की गर्दन में लोच हो, रीढ़ में लचीलापन हो, घुटनों में नम्यता हो और पवित्र चरणों पर दृष्टि हो तो मंत्रीवर के चरण तक कलाकार का भाल पहुंच ही जाता है। सुरीली जी का भाल चंदन से सुशोभित हो महक रहा था। यह व्यंग्य आज की उस हकीकत को बयान करता है कि किस तरह कलाकार (साहित्यकार) अपने भाल पर चंदन लगवाते हैं।

"नए देवता की तलाश" में रचनाकार मनुष्य की मतलबी आस्था पर प्रहार करते हैं। वे लिखते हैं- "मेरे लिए निष्ठा निवेश की तरह है, जहां ज्यादा 'रिटर्न' दिखे निष्ठा वहां लगानी होती है। एक ही देवता को समर्पित हो जाने से

अधिकतम लाभ का सिद्धांत ही लुप्त हो जाता है। आपको नहीं लगता कि 33 करोड़ देवता बनाकर विधाता ने देवताओं का अवमूल्यन तो किया ही बेचारे मनुष्य को भी चकरघिन्नी बना दिया। देवताओं ने बड़ा कंफ्यूजन मचा रखा है। किसी के पास कुछ है, किसी के पास दूसरा कुछ। पूरा पैकेज किसी के पास नहीं है। मुझे बुद्धि चाहिए और धन भी चाहिए। ये दोनों देवता पट जाएं तो प्रकाशक चाहिए। प्रकाशक देवता मिल जाए तो आलोचक चाहिए। ये रिझें तो प्रसिद्धि की देवी प्रसन्न हो, फिर सम्मान देवता प्रसन्न हो। आप देखिए न, ये जो गोरखधंधा सीरीज चलती है इसमें बहुतेरे देवी-देवता लगते हैं। एक देवता के भरोसे रहकर आप लिखते हो तो सिर्फ लिखते ही रहो और अंत तक पैन पकड़े रहो। पेन को पदक बनाने वाले देवता नहीं साध पाए तो बुद्धि की महादेवी की शरण में रहने से क्या लाभ!" मानवीय प्रवृत्तियों की गहन छानबीन इस व्यंग्य को अनूठा बनाती है।

"इसे दस लोगों को फॉरवर्ड करें" रचना में आधुनिक पीढ़ी द्वारा संदेशों को 'फॉरवर्ड' करने की कला का उल्लेख करते हुए व्यंग्यकार कहते हैं कि "इन दिनों विचारों का प्रवाह बिजली-सा है। मां गंगा लाशों की खदान बन गई है, वहाँ रेत उड़ती है तो आदमी निकल आते हैं। मैं व्हाट्सएप में भरी मिट्टी हटा भी नहीं पाता हूं कि दस-बीस विचार एक साथ और आ जाते हैं और धड़ाधड़ मेरे नाम से फॉरवर्ड हो जाते हैं। विचार, विचार हैं; उनमें ज्ञान हो यह जरूरी नहीं। फिर भी चारों दिशाओं से ज्ञान आ रहा है और शेष छह दिशाओं से फॉरवर्ड हो रहा है। इसके बावजूद मैं ज्ञान के 'ओवरफ्लो' को रोक नहीं पा रहा हूं। ज्ञान को रोक कर रखने में खतरा है। खोपड़ीनुमा बांध कमजोर हो चुका है, ओवरलोड होकर कभी भी फट सकता है। दिमाग की क्षमता सिकुड़ कर ईमानदारों जितनी रह गई है। इसीलिए ज्ञान को बाहर निकालने के लिए मैंने सारे 'फ्लड गेट' खोल दिए हैं। ज्ञान का स्तर खतरे के निशान से ऊपर पहुंच जाए तो दिमाग की कच्ची पुलिया का क्या भरोसा।" सधा हुआ कटाक्ष पढ़ते हुए पाठक अपने आप पर हँसने के लिए बाध्य हो जाता है।

"लाचार मरीज और वेंटिलेटर पर सरकारें" नामक व्यंग्य रचना कोविड काल में सरकारी तंत्र की टालमटोली का दृश्य सामने लाती है। व्यंग्य के तीखे तीर चलाते हुए रचनाकार कहते हैं कि "देश बीमार है। जनता परेशान है, वेंटिलेटर वाला बेड ढूँढ रही है। बयान आ रहे हैं कि वेंटिलेटरों की कमी नहीं है। सच है, तीस हजार से ज्यादा वेंटिलेटर खाली पड़े हैं। कई मेडिकल कॉलेजों और जिला अस्पतालों में वेंटिलेटर धूल खा रहे हैं और उनके खरीदी

अधिकारी माल पचा रहे हैं। पत्रकार खबरें ला रहे हैं कि वेंटिलेटर भेजने वालों के राजनीतिक खून का ग्रुप, पाने वाले राज्यों के राजनीतिक खून से मैच नहीं हो रहा है। इसलिए फलां-फलां राज्यों में नए वेंटिलेटर चालू नहीं हो पाए हैं। वे कहते हैं वेंटिलेटर खरीदी का कमीशन खाए कोई और, और चलाएँ हम! ना बाबा ना, प्रजातंत्र में ऐसा थोड़े ही होता है, तुम चारा खाओ तो तुम्हीं भैंस को समझाओ।" यह व्यंग्य उत्तरोत्तर तीखा हो जाता है और इलाज के अभाव में मर रहे लोगों की बेबसी यूँ बयान करता है- "विधायकों जैसे पवित्र लोग पाँच सितारा होटलों में बिकते हैं। वेंटिलेटर चालू हो या बंद उन्हें क्या फर्क पड़ता है। उनके लिए लोग मरें तो मरें, कल मरना था वे आज मर गए। मरने वाले लाइलाज थे, इतने बीमार थे कि न रैली कर सकते थे न वोट दे सकते थे। प्रजातंत्र में ऐसी नाकाम और मरियल जनता को क्यों जिंदा रखना चाहिए! जिनके फेफड़ों में दम नहीं हो उनके जेब में तो दम हो। पर अब..., न जेब का दम काम कर रहा है न सत्ता का।"

"ए तंत्र, तू लोक का बन" में दुनिया के लोकतांत्रिक देशों का बखान करते हुए धर्मपाल जी ने उचित ही कहा है कि "लोकतंत्र बहुत छलिया शब्द है, यह तंत्र कभी लोक का हुआ ही नहीं। लोकतंत्र हमेशा सत्ता का रहा। सत्ता का नाम आते ही राजनेताओं की आँखें फैल जाती हैं। उनकी मुस्कुराहट आपस में लुकाछिपी कर रही होती है और दिमाग कुर्सी पर छलांगें भरने लगता है।" व्यंग्यकार आगे कहते हैं- "पाकिस्तान जिसे लोकतंत्र कहता है वहाँ की जनता उसे जोकतंत्र मानती है, वहाँ की फौज उसे टट्टूतंत्र मानती है क्योंकि वहाँ की फौज को टट्टू चलाते हैं। रूस जिसे लोकतंत्र समझता है दुनिया उसे जासूसतंत्र कहती है। अमेरिका जिसे लोकतंत्र मानता है वह गनतंत्र है, वहाँ पर सरकार और लोग बात-बात पर अपनी 'गन' निकाल लेते हैं। चीन में ढोल पीट-पीटकर प्रचार करने वालों ने लोकतंत्र को प्रचारतंत्र बना रखा है। हांगकांग की जनता समझती है कि यह उन्हें भ्रम में रखने वाला भ्रमतंत्र है। कई देशों में कुछ-कुछ लोगों ने गैंग बना कर डैमोक्रेसी को गैंगतंत्र बना दिया है तो अफ्रीकी देशों में यह फेकतंत्र बन कर बदनाम है। लोकतंत्र हर जगह मुश्किल में है और इसके परिणाम निर्दोष जनता को भुगतने होते हैं।" विभिन्न लोकतंत्रों की यथास्थिति कहता यह व्यंग्य रोजमर्रा के व्यंग्य लेखन से एकदम अलग है और पाठकों को वैश्विक परिदृश्य से परिचित कराता है।

"कोई भी हो यूनिवर्सल प्रेजिडेंट" रचना में कहा गया है कि कोई भी बने अमेरिका का राष्ट्रपति, हमको क्या, उसे भी दोस्त बना लेंगे। वह भारत आएगा तो ताजमहल दिखाएंगे। उसके

स्वागत में हज़ारों स्कूली बच्चों को सड़कों पर उतार देंगे और बता देंगे कि ये होनहार बच्चे कुछ साल बाद वीजा लेकर अमेरिका आने वाले हैं। रचनाकार ने रचना में व्यंग्य कसा कि अमेरिका के राष्ट्रपति का काम है अमेरिका को महान बनाना। इसलिए वहां कभी चतुर-बुद्धिमान आदमी राष्ट्रपति होता है तो कभी चालाक-भोंदू। भारत के राष्ट्रपति बहुत संवेदनशील होते हैं, उनके ऊपर व्यंग्य लिखने की मनाही है। अमेरिकी राष्ट्रपति महाढीठ होते हैं, उनपर कोई भी व्यंग्य कर सकता है। "समझदार को सदाबहार इशारा" कटीले कटाक्ष करते हुए हमारे जीवन में आए मूर्खों का वर्गीकरण करता है। धर्मपाल कहते हैं कि ज्ञानी मूर्ख पहले दर्जे के मूर्ख होते हैं। वे हमेशा ज्ञान बांटते रहते हैं। उन्हें कोई मतलब नहीं कि कोई उनके ज्ञान के लपेटे में आ रहा है या नहीं।" ज्ञानवान बनाने वाली आधुनिक शिक्षा पद्धति पर तंज करते हुए वे कहते हैं- "मैकाले आए तो ज्ञान की भाषा बदल गई। आश्रमों का स्थान दुकानों ने ले लिया। सारा ज्ञान किताबों में घुस गया। दीमकें किताबें चट करने लगीं, वे ज्ञानवान हो गईं, मनुष्य ज्ञानहीन हो गया।" यह व्यंग्य हमारे समय के ज्ञान पर तगड़ा प्रहार है। धर्मपाल जी के व्यंग्य विषयों की रेंज अद्भूत है। "शर्म से सिकुड़ा घरेलू बजट" महंगाई से त्रस्त परिवारों के बजट पर बुना गया व्यंग्य है जिसमें हास्य की छटा है। "हममें से कोई भी अर्थशास्त्री नहीं है। फिर भी, हम हर महीने बजट बनाते हैं। चिरकाल से यह बजट घाटे का रहा है और रहेगा। मध्यम वर्गीय घरों की यही शाश्वत स्थित है। घाटे की पूर्ति के लिए ऋण देने हेतु हम बैंक और क्रेडिट कार्ड कंपनियों के जीवन भर आभारी रहेंगे। यूं तो हमारा मासिक वेतन पांच अंकों में होता है। पर सब कट-पीटने के बाद जो हाथ में आता है वह चार अंकों में सिमट जाता है। यह सिकुड़ा आंकड़ा बताना राष्ट्रीय शर्म की बात है।" बजट को लेकर रचनाकार ने आंखें खोल देने वाला सच उजागर किया है। "होली कथा का आधुनिक संस्करण" नामक रचना में व्यंग्यकार होलिका के माध्यम से व्यंग्य करते हैं। वे कहते हैं कि "जनता सुबक-सुबक कर रो रही थी। सत्य और दया की प्रतिमूर्ति प्रहलाद का दैत्य सम्राट के हाथों मारा जाना तय था। सम्राट के बाहुबल से सीआईए वाले भी डरते थे। सम्राट ने प्रहलाद के मस्तक को निशाना बनाया। प्रह्लाद जरा सा हट गया। सम्राट के मुक्के के प्रहार से खंभे के टुकड़े-टुकड़े हो गए। टूटे खंभे से नरसिंह का रूप धारण कर जनता निकली। जनता गा रही थी सिंहासन खाली करो कि जनता आती है। चुनाव की घोषणा हो गई। सम्राट हवा में शहर दर शहर छलांगें लगाने लगे। परिणाम के दिन वे

न विदेश में थे, न राजमहल में, वे संसद की चौखट पर खड़े थे। तब न दिन था, न रात थी। न विधाता निर्मित कोई प्राणी था, न कोई अस्त्र-शस्त्र था। जनता के वोटो गिनती हो रही थी और हरिण्यकश्यप हार रहे थे।" पौराणिक आख्यान को समकाल से जोड़कर कथा कहने के अंदाज ने इस व्यंग्य को यादगार बना दिया है।

"हम जीडीपी गिराने वाले" रचना के बहाने जनता की आर्थिक आधार पर नब्ज़ टटोली गई है। रचनाकार कहते हैं कि 'किलर' यानि हंता लोग भारत के लोगों की सुपीरियर प्रजाति है। इनका काम दलित और साधारण जनता को न्यूनतम समर्थन पर जिंदा रखना है। ये भाग्य विधाता हैं। इनका जन्म उच्च ग्रहों की श्रेष्ठतम स्थितियों में होता है। कोई भी पार्टी सरकार बनाए, इनकी संप्रभुता पर कोई फर्क नहीं पड़ता। बस इन्हें पुलिस और गुंडा टाइप भाइयों को पालना पड़ता है। ये हर चीज खरीद सकते हैं। ये हर विचारधारा और संस्कृति को गिरवी रखकर आगे बढ़ सकते हैं। हर राजनेता और अधिकारी का मार्केट रेट इन्हें मालूम होता है। ... इनके कुछ लोग सरकार बनाने, हिलाने और गिराने में पारंगत होते हैं। ये बड़े राज्यों की राजधानियों में पांच सितारा होटल बनवाते हैं। वहां विधायकों का ब्रेनवाश गारंटी से किया जाता है। ... सरकारी तंत्र किलर वर्ग का गुलाम होता है।... संविधान में जिन लोगों का जिक्र है हंता उसी जनता में है, पर उनसे बहुत ऊपर हैं। और अंत में साधारण जनता कहती है- हम हैं भारत के भोले लोग, हम सब मिलजुलकर रहते हैं। यह व्यंग्य अमीरों और गरीबों के बीच की व्यापक खाई को अपने तरीके से उभारता है। "बागड़बिल्लों का नया धंधा" में सरकारी दफ्तरों की पोल खोली गई है। रचनाकार कहते हैं- "सरकारी दफ्तरों की चांदी है, अंधेरा है तो सब जायज है। काम नहीं करो तो टोका-टाकी करने वाला कोई नहीं है। जिसको काम करवाना है वह तो घुप्प अंधेरे में भी रास्ता ढूंढ लेता है। हर जगह अंधेरा फैलाने वाले लोग अधिक हैं, उजाला लाने वाले कम। थोड़े से लोग जो उजाला फैलाने की हिम्मत करके आते हैं, अंधेरा उन्हें लील लेता है। बागड़बिल्लों की खाल बहुत मोटी है। बेचारी जनता खाल कहां से लाए, उसकी चमड़ी घिस-घिसकर और पतली हो गई है। बागड़बिल्लों का क्या, इनमें से बहुत-से अपराध की दुनिया से निकलकर सुरक्षित स्वर्ग की तलाश में राजनीति में घुस आए हैं। वे जहां जो दिखा अपना समझकर हड़प लेते हैं और पचा जाते हैं। भय, भ्रम और अंधेरे के माहौल में खड़ी जनता अपने समय के इंतजार में है।" इस तरह व्यंग्य अपने समय का आईना बन जाता है।

रचनाकार धर्मपाल महेंद्र जैन हर क्षेत्र में व्यंग्य के लिए एक जाना पहचाना नाम है। "श्रेय

लेने की महाप्रिय परंपरा" रचना को भी उन्होंने महान बना दिया है। सरल अंदाज़ में बात शुरू होती है- “कल मेरे पड़ोसी के यहां चोरी हो गई। पत्नी जी को अपार हर्ष हुआ, बोलीं अच्छा हुआ वह दोनों हाथों से समेट रहा था, आज सिमट गया। पत्नी जी घर-घर जाकर यह घटना आंखों देखे हाल की तरह बयां कर रही थीं। मुझे डर लगने लगा कि मोहल्ले वालों से प्रशंसा पाने के लिए चोरी का श्रेय वह खुद न ले लें। मैंने कहा भी- तुम जितनी खुश हो रही हो उतने खुश तो चोर भी नहीं होंगे। कहीं संदेह में पुलिस तुम्हें गिरफ्तार न कर ले। वे नहीं मानीं, न मानना उनका स्वभाव है। वे प्रसन्न थीं कि चोरों ने माल बटोरा और उन्होंने मोहल्ले में श्रेय।” रोज़-रोज़ की सामान्य बातें जब घने व्यंग्य में बदल जाती हैं तो बरबस धर्मपाल जी के व्यंग्य कौशल की दाद देनी पड़ती है। "दिल्ली है बिना फेफड़ों वालों की" दिल्ली में प्रदूषण की समस्या पर तीरनुमा प्रहार करता व्यंग्य है। धर्मपाल जी बताते हैं कि “दिल्ली में सबसे ज्यादा न्यायाधीश रहते हैं, सबसे ज्यादा सांसद हैं, सबसे ज्यादा आईएएस रहते हैं और सबसे ज्यादा मूर्ख! वे जिस दिल्ली में रहते हैं वहीं की हवा को जहरीली और दमघोंटू बनाते हैं और खुश होते हैं। वे विषैली हवा में भी सांस लेकर जिंदा है। जीवंत गैस चेम्बर में रहते हुए भी उफ्फ तक नहीं करते हैं। दीवाली पर चाहे फेफड़ों का दम निकल जाए पर पटाखे छोड़ने से बाज नहीं आते। हम दिल्ली वाले, हम दिल वाले हैं, भगवान भरोसे रहने के आदी हैं। अस्पताल में बेड खाली नहीं होंगे तो कॉरिडोर में पड़े-पड़े इलाज करा लेंगे और बिना फेफड़ों के भी अपनी जिंदगी जी लेंगे।” शक्तिशाली लोगों से भरी दिल्ली की बेचारगी पर इससे अधिक क्या व्यंग्य हो सकता है!

“संस्कृति के नशीले संस्कार" पश्चिमी संस्कृति में गांजा पीने पर है। “कैनेडा और अमेरिका की ठंडी हवा में मीठी-मीठी खुमारी है। प्राणवायु के साथ लोगों को मैरेवाना और गांजे के धुएं का लुत्फ मुफ्त मिलता है। यहां भारत जैसा भेदभाव नहीं है कि नशीले पदार्थ खाना-पीना हो तो युवा फिल्म स्टारों के फॉर्म-हाउस में गुपचुप पहुंचो। यहां की उदार और सहिष्णु सरकारों ने गांजे-भांग की प्रजातियों कैनबस और मैरेवाना के सेवन को वैध बना रखा है। लोग खुलेआम पॉट पीते हैं, ऑइल लेते हैं, बीज खाते हैं और मस्त रहते हैं।” वे व्यंग्य करते कहते हैं प्रजा को नशेड़ी बनाकर रखो तो सरकार का निठल्लापन छुप जाता है। कैनबस और मैरेवाना अब कैनेडियन व अमेरिकी संस्कृति के आधुनिक संस्कार हैं। इनके अलावा अन्य व्यंग्य रचनाएं ‘दिमाग अपना हो या दूसरों का’, ‘वाह-वाह सम्प्रदाय के तब्लीगियों से’, ‘ऐसे साल को जाना ही चाहिए’, ‘हाईकमान

के शीश महल में', 'बेरोजगार विपक्षी जी', 'डिमांड ज्यादा, थाने कम', 'किसी के बाप का कश्मीर थोड़ी है' और 'चापलूस बेरोजगार नहीं रहते' ऐसी रचनाएं हैं जिनमें नुकीले, तीखे, दुधारी तलवारनुमा व्यंग्य हैं, जिन्हें आप एकबार पढ़ने लगेंगे तो यह पता ही नहीं चलेगा कि दिन से रात कैसे हो गई।

"भीड़ और भेड़िए" नामक इस रचना में व्यंग्यकार धर्मपाल महेंद्र जैन ने 52 छोटे-बड़े ऐसे व्यंग्यों को पिरोया है, जो राजनीति के छोंक के साथ चटपटे व मसालेदार हैं। अधिकांश रचनाओं में राजनीति आ जाने से सिद्ध होता है कि आज राजनीति ने बहुत गहरे तक अपनी पैठ बना ली है। इससे घर परिवार भी अछूते नहीं रहे हैं। आज विश्व पटल पर स्वार्थ पूर्ण राजनीति जीवन के हर पहलू में साफ नजर आती है। रचनाकार की नजर से सामूहिक मुद्दे भी अछूते नहीं रहते। "भीड़ और भेड़िए" में कोविड की भयावह त्रासदी में मरीजों की दुर्दशा, सरकार की ढुलमुल नीति, अर्थव्यवस्था पर दुष्प्रभाव सभी का उल्लेख करते हुए पाठकों का ध्यान रचनाकार ने सलीके से अपनी ओर खींचा है। लगभग हर रचना का शीर्षक चयन, रचनाकार की पैनी दृष्टि को दर्शाता है। किताब का शीर्षक "भीड़ और भेड़िए" देखकर ही पाठक पुस्तक पढ़ने को लालायित हो जाता है। मेरा शत-प्रतिशत विश्वास है कि "भीड़ और भेड़िए" पुस्तक की विविधरूपेण रचनाएं विषमताओं, विसंगतियों से जूझते जनमानस की भाव चेतना को अवश्य ही झकझोरेगी और सुकून भी देगी। ऐसी रचनाओं को पाठक शिरोधार्य करेगा ही। इसके लिए धर्मपाल महेंद्र जैन जी को अनंत शुभकामनाएं। मुझे उनकी अगली व्यंग्य रचना का बेसब्री से इंतज़ार रहेगा ही।

समीक्षित कृति: भीड़ और भेड़िए

कृतिकार: धर्मपाल महेन्द्र जैन

प्रकाशकः भारतीय ज्ञानपीठ और वाणी प्रकाशन

पृष्ठः 136 मूल्यः 260/-

***

हिन्दी साहित्य और न्यू मीडिया

देवेश पथ सारिया से मेधा नैलवाल का साक्षात्कार

मेधा : हिंदी साहित्य और न्यू मीडिया के संबंध को आप किस तरह देखते हैं ?

देवेश : हिंदी साहित्य का न्यू मीडिया से संबंध इस बदलते तकनीकी युग में लगभग दशक भर पहले चीन्ह लिया गया था। इसमें अप्रत्याशित प्रगाढ़ता कोविड काल के दौरान आई है।

मेधा : सोशल मीडिया पर लेखकों की उपस्थिति से पाठकों की संख्या पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

देवेश : मुझे लगता है कि सोशल मीडिया से आधार बनाने वाले कवियों को सबसे अधिक लाभ हुआ है। लेकिन यह लाभ केवल पहचान का है, आर्थिक नहीं है। कविता पुस्तकों की बिक्री में कोई बहुत फर्क नहीं पड़ा है। यदि सोशल मीडिया से आर्थिक लाभ किसी तरह के लेखकों को हुआ है तो वह तथाकथित 'नई हिंदी' के लेखकों को हुआ है।

मुख्यधारा के गद्यकार (नई हिंदी से इतर) कुछ हद तक पाठकों को अपनी किताबों तक ले जाने में सफल रहे हैं। लेकिन उतना नहीं जितना उन्हें होना चाहिए। पुस्तक का प्रचार लेखक अपने दम पर करता है। यह प्रकाशक का भी काम है। कुछ प्रकाशक इसे ठीक से करते हैं लेकिन ज्यादातर नहीं।

मेधा : प्रचार एवं बिक्री के नए मंच न्यू मीडिया ने तैयार किए हैं। इस पर आपके क्या अनुभव हैं?

देवेश : जैसा मैंने पहले कहा- अभी गंभीर साहित्य को अपने प्रचार मॉडल पर और काम करने की ज़रूरत है। उनके पाठक मौजूद तो हैं लेकिन उन तक प्रकाशक अभी पहुंच नहीं पा रहे हैं।

मेधा : लेखक, प्रकाशक और पाठक किताब की इस आधारभूत संरचना में न्यू मीडिया ने नया क्या जोड़ा है ?

देवेश : हिंदी का आम लेखक जो अब तक पोस्टर, रील, लाइव जैसे शब्दों से अनभिज्ञ था, वह अब इन्हें बहुत सहजता से लेने लगा है। यहां तक कि फेसबुक भी कुछ लोगों के लिए बहुत जटिल प्लेटफार्म हुआ करता था। लेकिन बदलते वक़्त ने उसे लोगों के लिए जरूरत बना दिया है। साहित्यकार भी इसके अपवाद नहीं हैं।

मेधा : सोशल मीडिया पर आपकी उपस्थिति का आपकी रचनाशीलता पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

देवेश : मेरे लिए सोशल मीडिया पर उपस्थित रहना एक संतुलन बनाए रखने का प्रयास है। बतौर लेखक मेरी पहली कोशिश तो यही होती है कि मैं फेसबुक की 'मांग और आपूर्ति' श्रृंखला का शिकार ना हो जाऊं। मैं उन कवियों में से नहीं होना चाहता जो रोज एक कविता लिखते हैं। मुझे उनसे शिकायत नहीं जो ऐसा करते हैं लेकिन मेरी अपनी शैली उस तरह के लेखन के अनुरूप नहीं है। मेरी एक अन्य कोशिश औसत लेखन के प्रभाव से बचने की होती है।

एक और बिंदु जिससे बचना चाहिए वह साहित्य की टुच्ची राजनीति है। इससे हमेशा बचना संभव नहीं हो पाता। तो इसे मैं अपनी कमी के तौर पर लेता हूँ कि मैं संवेदनशील होकर कभी-कभी इसका शिकार हो जाता हूँ।

मेधा : हिन्दी की ई-मैगज़ींस और महत्वपूर्ण ब्लॉग्स पर प्रकाशन के अपने अनुभव साझा करने की कृपा करें।

देवेश : मुझे लगता है कि ई- मैगज़ींस और ब्लॉग्स के ऊपर रचनाएं प्रकाशित करने की कोई बंदिश नहीं है। ऐसा नहीं कि हर महीने अंक लाना है या हर रोज एक रचनाकार को प्रकाशित करना

है। इसलिए ऑनलाइन माध्यम कितनी भी कम या अधिक रचनाएं गुणवत्ता और संपादक की सहूलियत के आधार पर प्रकाशित कर सकते हैं। एक बात मैं जोड़ना चाहूंगा कि अधिकतर ऑनलाइन माध्यम अभी एक या दो व्यक्तियों के प्रयास से चल रहे हैं इसलिए उनके पास वर्कलोड बहुत हो जाता है। संपादक के व्यस्त होने पर कभी-कभी काम इसीलिए ठप भी पड़ जाता है। यदि संपादक मंडल में चार-पांच साहित्यकारों को जोड़ा जाए तो मुख्य/प्रधान संपादक को सहूलियत रहेगी और रचनाकारों को भी अधिक मौका दिया जा सकेगा। नए रचनाकारों के लिए तो यह वरदान होगा क्योंकि प्रिंट पत्रिकाओं में उनके प्रकाशित होने के अवसर कम होते हैं। कई बार नए रचनाकार के पास भी इतना सब्र नहीं होता कि वह अपनी अप्रकाशित रचनाओं को प्रिंट पत्रिका के पास साल भर रखा छोड़ सके।

मेधा : इन प्रश्नों के अतिरिक्त कोई विशेष अनुभव आप साझा करना चाहें।

देवेश : जैसे-जैसे समय आगे बढ़ेगा, ऑनलाइन माध्यमों का महत्व भी बढ़ता जाएगा। आने वाले दशकों में तो वही मुख्यधारा हो जाएंगे। इसलिए ज़रूरी है कि ऑनलाइन माध्यम (वे वेबसाइट भी जो भविष्य में अस्तित्व में आएंगी) अपनी जिम्मेदारी को भली-भांति महसूस करें और कोशिश करें कि संकुचित स्वार्थों से दूर रह सकें। मठाधीश होने की लालसा से बचा रहना जरूरी है।